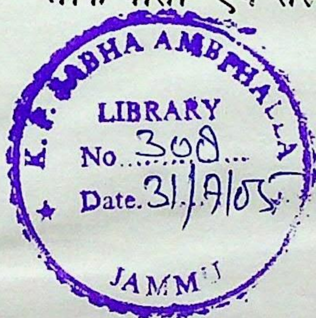
हमारा
साहित्य



हमारा साहित्य
1985

लोक-वार्ता एवं संस्कृति विशेषांक



सम्पादक

ओम गोस्वामी



जम्मू एण्ड कश्मीर अकैडमी आफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू ।

HAMARA SAHITYA—'85

(A special number on Folk Lore of J & K)

Edited by

OM GOSWAMI



मूल्य : 20/- आवरण : सुभाष आनन्द

प्रकाशक — सचिव, जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू।

प्रथम बार— 500 प्रतियां, (मार्च 1988)

मुद्रक — रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशनचन्द, जालन्धर—144004।

प्रकाशकीय

रियासत जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक विविधता इसकी ऐतिहासिक विशिष्टता की प्रथम साक्षी है। अनेकता में एकता का हमारा राष्ट्रीय-चरित्र इस राज्य की धमनियों में स्वभावगत ही विद्यमान दिखाई देता है। आज दुनिया के प्रत्येक भाग में सांस्कृतिक आदान-प्रदान से नये जीवन-मूल्य आकार प्राप्त कर रहे हैं। इसी तरह संचार तथा आवागमन की सुविधाओं के विकास के साथ-साथ हमारे यहां भी संस्कृति का सुचारु रूप विकसित हुआ है। पुराने सांस्कृतिक मूल्य पृष्ठभूमि में खो जाने का डर है। इसलिये आज आवश्यकता है कि अपनी उज्जवल सांस्कृतिक धरोहर का रख-रखाव किया जाए। इसी विचार-बिन्दु के दृष्टिगत 'हमारा-साहित्य' की वार्षिक संकलन-शृंखला के अन्तर्गत पहले भी अनेक विशेषांक हम प्रस्तुत कर चुके हैं। उसी सिलसिले में एक कड़ी के रूप में प्रस्तुत विशेषांक का प्रकाशन किया जा रहा है।

जम्मू-कश्मीर में लोक-वार्ता के संकलन का शुरुआती काम भी विधिवत् अकादमी स्थापना के साथ ही हुआ। इस दिशा में संकलन से आगे बढ़कर विश्लेषण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। परन्तु, इसके बावजूद यदि यह बात कही जाए कि रियासत की लोक-वार्ता का वृहद् क्षेत्र अछूता पड़ा हुआ है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है और अकादमी सुनिश्चित रूप से इस ओर उन्मुख है। हमारा प्रयास है कि रियासत की मूल भाषाओं के अतिरिक्त राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी कार्य का संधान किया जाए। यह खुशी की बात है कि हमारे विगत के इन प्रयासों का स्वागत होता रहा है।

हमारे इन प्रयासों से क्षेत्रीय लोक-वार्ताओं में हिन्दी माध्यम से शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा तो मिला ही है, साथ ही हिन्दी की नींव भी मज़बूती पकड़ रही है और 'लोक-संस्कृति' तथा लोक-वार्ता के अध्ययन को विस्तार भी प्राप्त हुआ है।

हमें आशा है कि हिन्दी जगत में हमारे इस उपक्रम को उपयुक्त सराहना मिलेगी।

अनुक्रम

डुग्गर की विशिष्ट गायन शैली--भाख

□ नीलाम्बरदेव शर्मा

लोकगीतों का संगीत के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है, जैसे शब्द और वाणी का, शरीर और आत्मा का। लोक-गीतों का जन्म मानव की प्रकृति, अपने वातावरण तथा परिस्थितियों की ओर प्रतिक्रिया के रूप में हुआ।

लोक-गीतों में छन्दों की अपेक्षा स्वाभाविकता अधिक दिखाई देती है, मात्राओं के स्थान पर स्वर पर अधिक ध्यान दिया जाता है। लोक-गीतों में कविता का आधार मात्रा नहीं, गीत-प्रवाह (time-metre) होता है। यदि मात्राओं की गिनती कम है, तो उस कमी को गाने के ढंग से पूरा किया जाता है। लोक-गीतों का आधार मुख्यत: अक्षर नहीं, शब्द अथवा ध्वनि है। संगीत अपनी मधुरता के कारण लोक-गीतों को एक नया जीवन, एक नयी विस्तृता प्रदान करता है, क्योंकि कई बार भाषा अस्पष्ट होने पर भी छंद और मात्रा की त्रुटियां होने पर, अथवा भाव कलात्मक ढंग से प्रकट न होने पर भी, संगीत की मधुर धुन इन सभी कमियों को अपने आवरण में लेकर एक नया रूप दे देती है। लोक-गीत इसीलिए सर्व-प्रिय हैं।

यद्यपि यह बड़ी आसानी से कहा जा सकता है कि गद्य की अपेक्षा पद्य का जन्म पहले हुआ, और संक्षिप्त होने के कारण कविता का जन्म होना स्वाभाविक भी था, परन्तु इस बारे में निर्णय करना आसान काम नहीं कि पहले संगीत का जन्म हुआ अथवा कविता का। लगता है अक्षर ध्वनि की अपेक्षा बाद में आए। चाहे वस्तु-स्थिति कुछ भी रही हो संगीत का लोक-गीतों की सृष्टि में बड़ा हाथ रहा है, और लगता है जैसे एक पंक्ति गुनगुनाते समय कवि को दूसरी पंक्ति भी सूझ गयी हो। इस में परिपक्व शैली का अभाव भले ही रहा हो, परन्तु संगीत का अभाव नहीं। यही बात डोगरी लोक-गीतों के बारे में बड़ी आसानी से कही जा सकती है, और डोगरा-पहाड़ी संगीत अपनी प्यारी-प्यारी धुनों और माधुर्य के कारण सारे देश में प्रसिद्ध है।

डोगरा-पहाड़ी संगीत, लोक-गीतों की ही भांति, जीवन की क्यारी में उपजा, उसकी परिस्थितियों, उसके सुख-दुख ने वीज का काम किया। सहज और स्वाभाविक ढंग से उपजे उद्गार ताल अथवा मात्राओं से मुक्त थे। इसलिये उन्हें शास्त्रीय संगीत के नियमों में बांधना सम्भव नहीं। परन्तु फिर भी इतना कहा जा सकता है कि ज्यादातर डोगरा-पहाड़ी संगीत राग पहाड़ी, राग दुर्गा तथा भुपाली के सुरों में बंधा हुआ है। झंझोटी राग की सुरें भी इन गीतों में शामिल हैं। जिन गीतों में ताल हैं, वह मुख्यत: दादरा, कहरवा, रूपक, दीप चन्दी तथा चंचल तालों में है। परन्तु डोगरा-पहाड़ी संगीत आम-तौर पर ताल और मात्राओं से मुक्त है।

जैसा कि 'गीत' शब्द से ही प्रतीत हो जाता है, यह गाई जा सकने वाली कृति होती है। लोक-गीत मानव के मानसिक जीवन का इतिहास हैं। इन में संसार के बारे में कौतूहल है और जीवन के प्रति अनुराग। जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं जो इन गीतों से अछूता रहा हो। लोक-गीतों में हमें मानवता के हृदय की धड़कनें सुनाई देती हैं, उसके सुख-दुख की झलकियां मिलती हैं। मनुष्य और प्रकृति लोक-गीतों के मुख्य पात्र हैं। लोक-गीत मुख्यता जीवन सम्बन्धी हैं। उनको सुनकर किसी प्रदेश अथवा देश, उसके निवासियों के स्वभाव तथा उनके रीति-रिवाज़ों के बारे में हमें पता चलता है। इनमें लोगों की भाषा, उनके रहन-सहन का परिचय मिलता है और उनके सुख-दु:ख के बारे में जानकारी हमें मिलती है।

डुग्गर बड़ी आसानी से तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है—पहाड़ी, मैदानी और कंढी। पहाड़ी और कंढी के इलाकों में जीवन बड़ा कठिन और दुखद होता है, परन्तु वहां भी कभी-कभार सुख के अवसर मिल जाते हैं, जैसे मैदानी इलाकों में सुख के साथ-साथ दु:ख की परछाइयां दिखाई दे जाती हैं। इसलिए प्राय: डोगरा-पहाड़ी इलाके के संगीत में हंसी-खुशी के गीतों की अपेक्षा गम और उदासी का पुट अधिक दिखाई देता है और 'भाखां' में तो यह तथ्य और भी अधिक उभर कर सामने आता है।

डोगरा-पहाड़ी संगीत का वर्गीकरण मोटे तौर पर इस प्रकार किया जा सकता है :—

1. संस्कार संगीत 2. धार्मिक संगीत 3. वीरों तथा देश के यश गान से सम्बन्धित संगीत (बारां) 4. किसान-मजदूरों का संगीत 5. भूत-श्मशान से सम्बन्धित संगीत 6. श्रृंगार से सम्बन्धित, मिलन-विरह का संगीत 7. भाखां 8. नृत्य संगीत 9. वाद्य संगीत।

'भाख' डोगरा-पहाड़ी लोक संगीत गाने का एक विशिष्ट ढंग अथवा शैली है। इसी कारण इसका डोगरी लोक-गीतों में भी अपना एक विशेष

स्थान है । बिहाइयां, घोड़ियां, सुहाग-संस्कार गीत हैं । बिसनपते, कारकां और भेटां, धार्मिक गीत हैं। बारां वीर गाथाएं हैं। लोक-गीतों की हर विधा किसी विशेष विषय के गीतों से सम्बन्धित है। परन्तु यह बात हम 'भाखां' के बारे में नहीं कह सकते। 'भाखां' में रितु-वर्णन भी मिलता है, श्रृंगार-विरह और मिलन-सम्बन्धी गीत भी मिलते हैं, मंगल-संस्कार, देश-भक्ति, जीवन की नश्वरता तथा प्रभु-भक्ति के बारे में भी गीत मिलते हैं। लेकिन भिन्न-भिन्न विषयों के होते हुए भी इनके गाने का ढंग एक ही है। इसीलिए इनको विषयों के आधार पर नहीं संगीत के आधार पर 'भाखां' कहा जाता है ।

'भाख' शब्द का अर्थ क्या है ? इस बारे में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता । कुछ लोग इसको 'भाष' से बना हुआ बताते हैं, जिसका अर्थ है बोलना । प्रो० शक्ति शर्मा का कहना है कि हैरानगी इस बात पर होती है कि जर्मन भाशा में एक शब्द है 'भाख' जिसका अर्थ है 'गीत' और डोगरी में भी इसका अर्थ 'गीत' है । डोगरी में 'भाख' का अर्थ गीत है, यद्यपि इस बारे में भिन्न-भिन्न मत हो सकते हैं, परन्तु इसका प्रयोग डोगरी में इसी रूप में ही मिलता है । इसीलिए 'भाख लगाना' ही कहते हैं, 'भाख बोलना' नहीं। हम 'भाख' को समूह गीत कह सकते हैं, और इसका जन्म प्रकृति की गोद में हुआ लगता है। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों से टकरा कर लौटती ध्वनि या आवाज़ गूंज-सी पैदा करती है, और एक ही आवाज़ दो सुरों वाली प्रतीत होती है। इसी से प्रभावित होकर शायद गायकों ने संगीत में सुरों का मेल अथवा सुर-संगम पैदा करने की कोशिश की हो, और इस सुर-संगम को भाख का नाम दिया हो। वैसे यह सुर-संगम हमें प्रकृति में हर मोड़ पर दिखाई पड़ता है। छल-छल बहती नदी का स्वर, झर-झर बहते झरने, फर-फराती हवा, छम-छम करती बर्खा का शोर, छोटे-बड़े पक्षियों के मधुर स्वर सभी मिलकर एक संगीत को जन्म देते हैं। 'भाखां' का केवल डोगरा-पहाड़ी संगीत में ही नहीं, अपितु भारतीय संगीत में एक महत्वपूर्ण स्थान है। 'भाखां' भारतीय संगीत की एक विशिष्टि शैली है। भारतीय संगीत का आधार सुर (melody) है, जबकि सुरों का मेल या सुर-संगम (harmony) आधार है पश्चिमी संगीत का । सुर आधार होने के कारण ही भारतीय संगीत में वाद्य-वृंद की शुरूआत कोई बड़ी पुरानी नहीं, और यह पश्चिमी संगीत के प्रभाव में ही सम्भव हो सकी ।

'भाखां' गाने का एक विशेष ढंग है, यह समूह गान के रूप में गायी जाती हैं। गाने वाली पार्टी—कम से कम चार गायक—एक स्थान पर बैठ जाती है। हर एक सदस्य एक हाथ कान पर रख लेता है, और पार्टी का अगुआ, जिसको

1. साढ़ा साहित्य, 1978 भाखां : इक परचोल

'भाखू' कहते हैं, अपना दूसरा हाथ हवा में लहराता रहता है। ऐसा वह सुरों के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ करता है। यही बात शास्त्रीय संगीत का गायक भी करता है। कान बंद करने का मनोवैज्ञानिक कारण होता है। गायकों ने कोई ट्रेनिंग प्राप्त नहीं की होती, इसलिए भिन्न-भिन्न सुर उनको भ्रम में डाल सकते हैं। अत: वह अपने कान बंद कर लेते हैं ताकि दूसरे के सुर उनको सुनाई ही न दें। यद्यपि गायक एक ही सुर से गाना शुरू करते हैं, परन्तु बाद में वह भिन्न-भिन्न सुर पकड़ लेते हैं। बीच में अगुआ सुआई अथवा लम्बा सुर लगाता है, जो पश्चिमी संगीत में कॉर्ड (chord) के समान होता है। सुआई लगाने वाला गायक ओऽऽऽआऽऽऽईऽऽऽका अलाप भर कर सुंदर मुर्कियां लगाता है। यह मुर्कियां कविता में मात्राओं की त्रुटियों को पूरा करने का काम भी करती हैं। भिन्न-भिन्न सुरों का यह अनोखा मेल या संगम एक बड़े अद्भुत वातावरण को जन्म देता है, और यह सुर-संगम पश्चिमी संगीत में 'हारमनी' (harmony) से बहुत मिलता-जुलता है। परन्तु 'भाखा' में किसी वाद्ययंत्र का प्रयोग नहीं होता। गायक पूरे सुर और लय में, परन्तु बिना ताल के गाते हैं। डोगरी में बहुत से लोक-गीतों की विधाएं हैं जिन को गाते समय ताल अथवा वाद्य यंत्रों का उपयोग नहीं होता। बिहाई, घोड़ी, सुहाग और 'चन्न' भी हम ऐसे गीतों में शामिल कर सकते हैं।

'भाखां' का सम्बंध सुरों से है, इसलिए उनकी तीन किस्में हैं—'नीमें' अथवा छोटे सुर वाली भाख, दरम्यानी सुर वाली और लम्बी या ऊंची सुर वाली भाख। लम्बी भाख में विलम्बित का अंश अधिक होता है, और छोटी भाख में द्रुत का अंश अधिक होता है। बिना वाद्य-यंत्रों के गाए जाने वाली यह विधा 'भाख' डोगरा-पहाड़ी संगीत की भारतीय संगीत को एक अनूठी भेंट है। यदि हम रिचाओं की बात न करें, जिनमें सुरों के मेल का आभास होता है, तो 'भाखां' ही एक ऐसी संगीत शैली है जिसमें सुरों का संगम पाश्चात्य संगीत की 'हारमनी' (harmony) के समान प्रतीत होता है। मुझे याद है जब 1959 के अंत में मैं दो वर्ष बाद इंग्लैंड से लौटा था, उस समय मैंने जम्मू रेडियो पर एक talk देते हुए 'भाखा' में सुर-संगम अथवा harmony की बात कही थी। यह सुर-संगम केवल 'भाखां' में ही क्यों दिखाई देता है, भारतीय संगीत की और विधाओं में क्यों नहीं ? मैं कोई संगीतज्ञ नहीं, इसलिए मैं संगीत की बारीकियों, इसकी भिन्न-भिन्न शैलियों को भली प्रकार नहीं जानता। भिन्न-भिन्न रागों से भी मैं पूरी तरह परिचित नहीं। इसलिए यह कार्य तो कोई संगीतज्ञ ही कर सकता है।

'भाखा ते गीत'[1] नाम के अपने एक लेख में देशबंधु डोगरा नूतन ने

---

1. साढ़ा साहित्य, 1983

'भाखां' के बारे में और बातों के इलावा दो ऐसी बातें कहीं हैं, जो भ्रामक हैं। उनका कहना है कि भाखों में भिन्न-भिन्न सुर लगते हैं, इसलिए इनकी नोटेशन अथवा स्वर-लिपि तैयार नहीं हो सकती है। पश्चिमी संगीत का आधार ही harmony है, और न केवल गीतों को ही, अपितु symphonies को भी स्वर-लिपिबद्ध किया गया है।

दूसरी बात उन्होंने डोगरी भाखों की क़िस्मों के बारे में कही है। मुझे लगता है कि उन्होंने भिन्न-भिन्न इलाकों में गाई जानी वाली भाखों को इलाकों के नाम दे दिए हैं—जैसे 1. पङास्तु भाख 2. बन्दरालती भाख 3. जन्दराही भाख 4. जम्मुआली भाख 5. बलाह् लती भाख इत्यादि। भिन्न-भिन्न इलाकों में गाई जाने वाली 'भाखों' की वही तीन किस्में हैं—छोटी, दरम्यानी और लम्बी। पर जैसे भारतीय संगीत में गायकी के अनेक घराने हैं—कैराना घराना, पटियाला घराना, आगरा घराना, ग्वालियर घराना इत्यादि, और जैसे घरानों की गायकी से राग नहीं बदलते, केवल उनको प्रस्तुत करने का ढंग विशेष होता है, इसी प्रकार पहाड़ी, मैदानी और कंढी के इलाकों में 'भाखां' गाने के ढंग में थोड़ा-बहुत फर्क आ जाता है। पर अच्छी 'भाख' चाहे जिस इलाके में ही क्यों न गाई जाती हो, अच्छी ही रहती है।

यद्यपि लेखक की समझ के अनुसार 'भाखां' डोगरा-पहाड़ी संगीत की एक विशेष शैली है, फिर भी भाखाओं को लोक-गीतों की एक विधा के तौर पर भी लोक-गीतों के संग्रहों में सम्मिलित किया गया है। अत: 'भाखां' के कला पक्ष और भाव पक्ष के बारे में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। इस दिशा में प्रो० शक्ति शर्मा ने अपने लेख 'भाखां—इक परचोल' (साढ़ा साहित्य, 1976) में विस्तारपूर्वक से इन बातों का ज़िकर किया है। मैं केवल इतना ही कहना चाहूंगा कि इन 'भाखों' में वह गीत भी शामिल हैं, जिनको प्राय: 'भाखां' के ढंग में नहीं गाया जाता। इस बात को मैं इस प्रकार स्पष्ट करूंगा। झंझोटी एक भारतीय राग है और डोगरी लोक-गीतों में झंझोटी एक साहित्यिक विधा है जिसका अर्थ है छोटे और मधुर गीत या लिरिक्स (lyrics)। परन्तु इन झंझोटियों में से भी कुछ को 'भाखां' के ढंग में गाया जाता है, ठीक ऐसे ही जैसे कुछ 'चन्न' गीतों, 'बिहाइयों' और 'सुहागों' को भी 'भाखां' के ढंग में गाया जाता है।

पश्चिमी संगीत के विपरीत, जहां बहुत से सुरों का संगम होता है, भारतीय संगीत में एक ही सुर प्रधान होता है। कुछ पश्चिमी संगीतज्ञ इसलिए भारतीय संगीत में एकरसता या monotony की शिकायत करते हैं। और जो भारतीय, पश्चिमी संगीत की पद्धतियों से भली-भांति परिचित नहीं, वह पश्चिमी समूह गान को सुनकर गायकों के बेसुरा होने की बात करते हैं। 'भाखां' में भिन्न-भिन्न सुर लगने के बावजूद एक अद्भुत संगम दिखाई देता है, जिससे

सुनने वालों को आनंद मिलता है। इसलिए इस बात से किसी को हैरानी नहीं होनी चाहिये कि कुछ वर्ष पहले जब 'भाखां' गाने वालों की टोली हमारे प्रदेश से फ्रांस गई थी, तब उनके संगीत की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी।

आजकल 'भाखां' गाते समय वाद्य-यंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है। 'घिरी घटा घनघोर' और 'सुच्ची बी दिन्नां मोइयै, पूरी बी दिन्ना, मेरे कन्ने चित्त लायां ओ चम्बे दिये गोरिये' ऐसे ही समूह गीत हैं जिनकों भाखां के ढंग में, वाद्य-यंत्रों की सहायता से गाया गया है। और अब तो श्री ध्यानसिंह (बटैह्ड़ा निवासी) और वहीं के निवासी श्री पूरण सिंह आधुनिक 'भाखां' लिख रहे हैं जिनको वह 'भाखां के ढंग में अकेले गाकर प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि 'भाख' की लोक साहित्य की एक विधा के रूप में भी काफी चर्चा की जाती है, और प्रो० शक्ति शर्मा ने अपने लेख 'भाखां इक परचोल' (साढ़ा साहित्य 1976) में इसके साहित्यिक तथा कलात्मक गुणों पर विस्तृत प्रकाश डाला है, फिर भी मैं कहना चाहूंगा कि 'भाखां' मूलत: एक विशेष संगीत शैली है क्योंकि कई बार 'चन्न' और इसी प्रकार विहाइयां, सुहाग इत्यादि भी 'भाखां' के ढंग में गाए जाते हैं।

लोक-गीतों और लोक-संगीत की निधि को वर्तमान युग में जहां रजतपट, रेडियो और दूर-दर्शन तथा उद्योगीकरण के कारण हर वस्तु का अपना पुराना रूप खो जाने का डर है[1], हमारे भाषा-प्रेमियों और संगीतज्ञों का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसा न होने दें। लोक-संगीत की स्वर-लिपि तैयार की जाए ताकि नए-नए प्रयोग यदि किए भी जाते हैं, तो भी इनका मूल रूप और विशिष्टता बनी रहे।

संक्षेप में, 'भाखां' की डोगरी लोक-गीतों में तो अपनी एक विशेष महत्ता है ही परन्तु इनका न केवल डोगरा-पहाड़ी संगीत, अपितु भारतीय संगीत में एक विशेष स्थान है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे संगीतज्ञ इस विशिष्ट शैली पर शोध करें और इसकी विशेषताओं, इसके भारतीय और पश्चिमी संगीत के साथ सम्बन्धों पर प्रकाश डालें।

□

1. बनाए और सम्भाले रखने के लिए।

डुग्गर की लोक-नाट्य परंपरा : भगतां

□ ओम गोस्वामी

भारतीय संस्कृति का घटक : लोक-नाट्य :

डोगरी भाषा की साहित्यिक तथा डुग्गर की सांस्कृतिक गतिविधियों का परिचालन जम्मू नगर से होता है । कारण कि अपनी ऐतिहासिक स्थिति के कारण यह नगर जम्मू-कश्मीर राज्य की शीतकालीन राजधानी और शैक्षणिक तथा व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ है । परन्तु डोगरा जाति की सांस्कृतिक विशिष्टताओं के प्रामाणिक अध्ययन के लिए बहुत ज़रूरी है कि जम्मू नगर की परिधि से निकलकर खोज-पड़ताल की जाए । क्षेत्र में काम करके जिन धनात्मक परिणामों तक पहुँचा जा सकता है, वे बन्द कमरे में प्राप्त कर पाना सहज संभव नहीं—अपितु इसके द्वारा हमारे किन्हीं पूर्वाग्रहपूर्ण निष्कर्षों पर पहुँचने का खतरा भी रहता है । लोक-नाट्य के संदर्भ में बात करें तो हमारी इस धारणा की पुष्टि होती दीखती है । 1985 ई० तक जम्मू नगर में यह धारणा प्रचलित रही है कि डुग्गर क्षेत्र में कभी कोई लोक-नाट्य परंपरा न थी । तथ्यों की खोज-बीन के बिना ही आधुनिक नाट्य से सम्बंधित कुछ नाट्य-कर्मी इस धारणा का प्रचार करते रहे हैं । कुछ लोग भूतकाल में 'भगतां नाट्य' की समृद्ध परंपरा के होने की बात स्वीकार करते रहे हैं । जबकि इसे कपोल-कल्पित कहने वालों ने पूरे विश्वास के साथ इसके विपरीत विचार प्रकट किए हैं ।

लोक-नाट्य भारतीय संस्कृति का विशेष घटक है। और तथ्य यह है कि संस्कृति अनुभूति-सिद्ध वस्तु है । यह बन्द कमरे में नहीं पनपती, प्रत्युत् खुले आकाश तले उन्नयन को प्राप्त होती है । इसलिए इस धारणा पर सहज ही प्रश्न-चिह्न टंक जाता है कि डोगरा संस्कृति में लोक-नाट्य परम्परा क्योंकर न विकसित हुयी होगी । विशेषतया तब जब यह सांस्कृतिक खंड सदियों सामंतशाही तंत्र के अधीन रहा है और जहां लोक-नाट्य के निर्माणक तत्व यथा—लोक-गाथा, लोक-गीत, नृत्य, संगीत, रिच्यूल, अनुकरण-वार्ता आदि

अलग-अलग इकाइयों के रूप में वर्तमान हैं। डुग्गर की लोक-वार्ता के अन्तर्गत दन्त-कथाएं, प्रेम-विषयक कथानक तथा परिहास-विषयक वार्ता की उपस्थिति लोक-नाट्य की ओर ही संकेतित करती है। ऐसे विपुल नाट्य-तत्वों के होते हुये लोक-नाट्य न उभरे तो इसे आश्चर्यजनक ही मानना होगा। ऐसे वातावरण में तो अनेक नाट्य-मंडलियों के पनपने की संभावना होती है। उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए यहां सामंतवादी मानसिकता प्रचुर मात्रा में विद्यमान रही है। क्या ऐसा होना अनहोनी-सी बात नहीं लगेगा कि प्रश्रयदाता जनमानस तो सामने हो, परन्तु रसोद्रेक करने में सक्षम रंग-मंडलियां न हों।

भगतां : डुग्गर का लोक-नाट्य :

इन्हीं तथ्यों को सामने रखकर हमने इस क्षेत्र की नाट्य-परंपरा का अनुशीलन किया तो बहुत ही चौंकाने वाले तथ्य उभर कर सामने आए। उनमें से कुछ इस तरह थे :—

1. जम्मू और दूसरी पहाड़ी रियास्तों में 'भगता' तथा इससे मिलती-जुलती लोक-नाट्य परंपराए मौजूद रही हैं।

2. जम्मू प्रांत के अतिरिक्त पाकिस्तानी पंजाब के डोगरी भाशी क्षेत्रों में भी 'भगतां'—नाट्य परंपरा देश विभाजन (1947 ई०) तक विद्यमान थी।

3. जम्मू क्षेत्र से प्रवास करके भगत-मंडलियां कश्मीर में आबाद हुयी थीं और इस समय वहां भगतां परंपरा 'बांड पाथर' के नाम से ज़िन्दा है।

वस्तुत: जम्मू, चम्बा, कांगड़ा में भगत नाम से प्रचलित लोक-नाट्य हिमाचल के ऊपरी इलाकों तथा शिमला में 'करयाला' के नाम से प्रसिद्ध है।

4. 'भगतां' लोक-नाट्य की परंपरा घराना परंपरा रही है। परन्तु इसमें शौकिया कलाकारों के सम्मिलित होने पर कोई प्रतिबन्ध न था।

5. भड्डू क्षेत्र में प्रचलित 'हिरण-नाट्य' भगतां का ही शुद्ध रूप है। परन्तु इसे पेशेवर भगतिये कलाकारों के स्थान पर गांव के लोग प्रस्तुत करते हैं।

कार्यविधि का निर्धारण :

परन्तु, उपर्युक्त निष्कर्षों पर हम सहसा ही नहीं पहुँच गए थे। बचपन में जम्मू के मध्य स्थित पहाड़ियां मोहल्ले में गरीब लोगों के शादी-ब्याह में भगतियों का तमाशा इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं देखा था। इस बस्ती में अधिकांश आबादी हरिजनों की हुआ करती थी। इनके घरों में भगतिये एक-एक हफ्ता तक चौकी जमाए रखते और हास-परिहास का वातावरण बनाए रखते। इसलिए, जब इस परंपरा की प्रामाणिक जानकारी की आवश्यकता पड़ी तो इस लुप्तप्राय परंपरा को खोजने के लिए यह विधि निर्धारित की गई :—

(क) बजुर्ग एवं परिचित हरिजन मित्रों से पूछताछ ।

(ख) ऐसे ग्रामीणों से बातचीत जो गुज़रे वक्तों में गाँव की सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रत्यक्षदर्शी अथवा भोक्ता रहे हों ।

(ग) डुग्गर के समृद्ध एवं बड़े गाँवों का भ्रमण तथा तथ्यों की छानबीन ।

इस त्रिसूत्री कार्यविधि से बहुत ही प्रामाणिक सामग्री हमारे हाथ लगी ।

बड़े गांवों में भगतियों की परिहासोत्तेजक कला के अनेक प्रशंसक अब भी मौजूद हैं । भगतियों की कला के मुख्य प्रश्रयदाता गाँव के लोग ही थे । व्याह-शादी में इन्हें न्यौतने के लिए घरवाले सवा रुपया और थोड़ा-सा मिष्ठान्न भेजा करते थे, परन्तु कई बार मंगल उत्सव की सूचना मिलने पर यह लोक-नाट्य मंडली बिन बुलाए भी पहुँच जाती थी और अपना अखाड़ा बांध देती थी । घरवाले इन्हे सूखा राशन आदि देते थे तथा इनकी नाट्य-कला के दर्शक अपनी खुशी को व्यक्त करने के लिए इन्हें नकद इनाम भी देते—जिसे 'बेल' कहा जाता । अपनी नाट्य-विद्या द्वारा ये लोग लोगों की जेबें खाली करना भी खूब जानते थे । इनके परिहास और तीखे-चुटीले वाक्यों की ताव न लाकर कजूंस से कंजूस व्यक्ति भी 'बेल' दे डालता । इसके अतिरिक्त ये लोक कलाकार वर्ष में दो बार फसल निकलने पर किसानों के खेतों में पहुँच जाते और 'गड्डु' (कटे अनाज की गड्डी) प्राप्त करते । इन्हीं दिनों ये लोग लोहार, बढ़ई, चामार आदि अन्य कारीगर जातियों से भी थोड़ा-थोड़ा अनाज मांग लाते, क्योंकि इन्हें भी फसल पर पूरा गाँव अनाज पहुँचाता था ।

भगतां पर प्रारंभिक कार्य :

इस लुप्तप्राय परंपरा की तलाश के लिए हमने सौ प्रश्नों की एक व्यापक प्रश्नावली तैयार की । नमूने के लिए कुछ प्रश्न नीचे दिए जा रहे हैं :—

(क) लोगों से :

1. क्या आप के क्षेत्र में भगतिये तमाशा करने आते थे ?

2. किन-किन प्रसिद्ध भगतियों के नाम स्मरण हैं ?

3. भगतां नाट्य आयोजित करने का अवसर क्या होता था ?

4. भगतिये समाज के किस वर्ग से सम्बंध रखते थे ? और सामाजिक किन वर्गों के होते थे ?

5. सुप्रसिद्ध भगतियों के नाम जिन की कला का डंका बजता रहा हो ।

(ख) भगतियों से :

1. आप की भगत मंडली का इतिहास ।

2. आप की जानकारी में भगतियों के कौन से दल/घराने/मंडलियां प्रसिद्ध थीं ? किसी विशेष मंडली का निर्माण कैसे होता था ? इनकी प्राचीन परंपराओं की जानकारी। आपकी अपनी मंडली में कौन कौन से प्रसिद्ध कलाकार हुए हैं ?

3. क्या किसी भगतिए को सामंतशाही दरबार का प्रश्रय प्राप्त था ? इस संदर्भ में क्या कोई सनद/इनाम वगैरह मिला ?

4. अपनी मंडली द्वारा अभिनीत 'कोमकों' की विशेषताओं का विवरण। इस मंडली की अपनी कौन-कौन-सी विशिष्ट आइटमें थीं।

5. भगतां लोक-नाट्य से सम्बंधित विभिन्न वस्तुओं, पात्रों तथा अभिनय आदि से सम्बद्ध विशिष्ट शब्दावली।

6. भगतियों में प्रचलित गुप्त भाषा की जानकारी।

प्राप्त सामग्री एवं जानकारी का स्वरूप :

विभिन्न प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के अतिरिक्त इनके द्वारा अभिनीत विभिन्न 'कोमकों' (प्रहसनों) को संक्षेप में लेखनीबद्ध भी किया गया ताकि इन्हें प्रकाशित करके भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जा सके। यह तथ्य है कि इन प्रहसनों का मुख्य सम्बन्ध देखे जाने से है और इनके पठन द्वारा उतना प्रभाव अपेक्षित नहीं होता। कुछ ऐसा ही अन्तर जैसा कि नाट्य-आलेख तथा टेलीविजन की प्रस्तुति में दृष्टिगोचर होता है।

इस खोजबीन के दौरान बहुत ही प्रामाणिक सामग्री हाथ लगी जिसका यथोचित ढंग से संकलन कर लिया गया। परन्तु इस यात्रा में सेवाराम भगतिये से हुयी मुलाकात बहुत ही उपयोगी रही। सब से बड़ी बात यह थी कि वह जम्मू में ही रह रहा था। इस समय वह अपना पुश्तैनी काम छोड़ चुका है। उसने बतलाया कि उसने 1965 ई० में जम्मू नगर में अपनी कला का अन्तिम प्रदर्शन किया था। अब कभी कभार गाँवों से उचित निमंत्रण आने पर पुराने प्रशंसकों का दिल रखने के लिए वह चला जाता है।

अपनी यात्राओं और विभिन्नि सूत्रों के माध्यम से हमने साठ से अधिक प्रहसनों का संकलन किया है। और इस नाट्य-परंपरा के इतिहास पर एक पुस्तक की सामग्री अलग से तैयार पड़ी है।

भगतां-नाट्य डुग्गर प्रदेश की ऐसी परंपरा रही है, जिस पर यहाँ के सुधि लोगों को जायज़ गर्व हो सकता है। क्योंकि कहा गया है—"रुलाना आसान है। हंसाना सब से कठिन।" हास्य की आनन्द दशा तक पहुँचाने वाला भगतिया मानो दर्शकों के कलेजे के तार अपनी उंगलियों में थामे रखता है। बात-बात

पर हंसाना और फिर अचानक गंभीर बना देना, केवल वाक्यों द्वारा ही नहीं, अपने अभिनय और गतिविधियों द्वारा भी गुदगुदी पैदा करने की उसमें विलक्षण क्षमता होती है। भगत मंडली द्वारा दिखाया जाने वाला नाट्य; प्रहसनों की एक लम्बी कड़ी होता है। प्रत्येक प्रहसन अपने आप में एक पूर्ण एकांकी होता है। और इन एकांकियों की कड़ी उतनी ही लम्बी होती जाती है—जितनी सहृदयता से दर्शक 'वेलें' लुटाते जाते हैं। इन प्रहसनों में गीत-संगीत एवं नृत्य भी यथा स्थिति पिरोए गए होते हैं।

भगतां : नाटकीय संगठन एवं अन्य सामग्री :

प्रत्येक नाट्य-मंडली जन-रंजन के लिए अधिक से अधिक आइटमें प्रस्तुत करने में दूसरी मंडली से बाज़ी मार लेना चाहती है। इसलिए इस लोक-नाट्य की परिधि में वे तमाम चीज़ें सम्मिलित करने की कोशिश की जाती है, जिन से जनता का ध्यान आकृष्ट होता हो और जिनमें लोगों के मनोरंजन की सामर्थ्य हो। यह लोक-नाट्य अपने घेरे में इन चीज़ों को समोए रहता है :—

1. देव स्तुति
2. नट-नकल-स्वांग
3. गाना-बजाना
4. नृत्य
5. बाज़ीगरी की कला

नाट्य प्रस्तुति का प्रारंभ मंगलाचरण के रूप में देव-स्तुति से होता है। इस में वैष्णो देवी की आरती तथा अन्य स्थानीय देवी-देवताओं का स्मरण करने के उपरान्त गुरु स्मरण और फिर साज़ पूजा की प्रथा है।

अभिनय तथा वाचन की दृष्टि से इस में दो मुख्य पात्र होते हैं। इन्हें 'पोछा' (प्रश्नकर्ता) तथा 'पोपा' (विदूषक) कहा जाता है। 'पोछा' कतिपय प्रहसनों में सूत्रधार का काम भी करता है। और कई बार गायक-मंडली भी सूत्रधार का कार्य करती है। इस अवस्था में गीत गाकर प्रस्तुत किए जाने वाले नाट्य की, या पात्र के स्वभाव की व घटना आदि की सूचना दी जाती है। साज़ों पर बैठे लोग, बजाने के साथ-साथ गाने का काम भी करते हैं। मुख्य पात्रों के वार्तालाप में अतिरिक्त पात्रों की आवश्यकता पड़ने पर इनमें से कुछ यथावसर उठकर नाटक के सहभागी भी बन जाते हैं। इनके अतिरिक्त इस मंडली में स्त्री का रूप धारण करने वाले दो पुरुष और होते हैं जिन्हें सखी की भूमिका निबाहनी होती है। प्रस्तुति के मध्य नाचना-गाना इनका मुख्य कार्य है। परन्तु मुख्य पात्रों के वाचन तथा घटनाक्रम में स्त्री पात्र की आवश्यकता होने पर भी यह सखियां अपनी भूमिका अदा करती हैं। किन्हीं स्थानों पर आजकल

स्त्री का पूरा लिबास न पहन कर, मात्र सिर पर ओढनी ओढ़ कर ये पुरुष पात्र स्त्री की भूमिका करने लगते हैं।

भगतां में विदूषक का महत्व :

'पोछा' सहज परन्तु व्यंग्य भरी बात करता है और विदूषक भोंडी तथा परिहासपूर्ण द्वयर्थक बात कहता है। परन्तु वार्तालाप की पांच-छ: पंक्तियों के अनन्तर ही वह ऐसे नहले पर दहला फेंकता है कि उसका वक्र-कथन हाज़िर-जवाबी का लाजवाब नमूना बन जाता है। इसके साथ ही मानो गोल (पिड़) में खड़े दर्शकों में हंसी का गोला फूट पड़ता है। द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग जो आरम्भ में विदूषक की मोटी, मूढ़ बुद्धि का प्रदर्शन करता दिखता है, सहसा उसकी वाचाल-चंचलता का दिल-फरेब नमूना बन जाता है। यदि उसकी मूढ़ता में कुछ निहित अर्थ पहले ही स्पष्ट होने लगे तो 'पोछा' (प्रश्नकर्ता) उसे अपने ठाहरे[1] से तीन चार चोटें कराता है। इसकी हल्की-सी चोट से ज़ोर की आवाज़ उठती है और विदूषक इससे कराहने, चिल्लाने का अभिनय करता है। उसे तकलीफ होने, आय-हाय आदि करने से गोल में दोबारा हंसी की फुलझड़ियां खिलने लगती हैं। परन्तु आंगिक अभिनय यहीं तक सीमित नहीं रहता। विदूषक इस मार-पिटाई से बचने के निमित्त इधर उधर ऐसी कलाबाजियां खाता है कि देखने वाले दांतों तले उंगली दबा लेते हैं। बाज़ीगरों की पुश्तियां लगाने की कला में यह विदूषक निपुण होता है। वैसे भी विदूषक के लिए आवश्यक है कि वह हट्टा-कट्टा हो, क्योंकि बल के भोंडे प्रयोग द्वारा वह दर्शकों को हँसा-हँसा कर उनसे धन निकलवा सकता है। एक प्रसिद्ध भगत नाट्य-मंडली के विषय में प्रसिद्ध है कि एक प्रदर्शन के दौरान उसके विदूषक ने 'अंग्रेज-साहब' की भूमिका करते हुये एक हट्टे-कट्टे गधे को अपने कंधों पर उठा लिया था। उसकी इस क्रिया से भयभीत होकर गधे का पेशाब निकल गया और विदूषक इसमें भीग गया। प्रत्युत्पन्न मति द्वारा अंग्रेज़ की भूमिका कर रहे विदूषक ने मज़ाकिया स्वर में पूछा—"मेम साब, हमारे उप्पर ये फव्वारा किसने चला दिया। बंद करो, बंद करो। अभी साहब नहाना नहीं मांगता।" फूहड़पन द्वारा भी कृषक जन-मानस का मनोरंजन होता है - इस तथ्य को यह लोक-कलाकार अच्छी तरह जानते हैं। कहते हैं सन् बयालीस में भी अंग्रेज़ साहब की इस नकल पर रियास्त के सीमावर्ती गांव से नाट्य-मंडली ने पचास रुपये की बेलें प्राप्त की थीं, जिसे कि उस युग में एक कीर्तिमान माना गया था।

विदूषक वही सफल माना जाता था जो दो कलाबाजियों में लोगों के गोल के आर-पार निकल जाए।

---

1. खोखले बांस का साढ़े तीन फुट डंडा जो एक ओर से दूर तक चिरा होता है।

भगतियों की नाट्य-प्रस्तुति में अभिनय के नाम पर आंगिक-वाचिक दोनों शैलियों से वांछित प्रभाव पैदा किया जाता था। दर्शक की उत्सुकता जागृत करने में यह अभिनय पूर्णतया सफल रहता है। ये लोग जिस पात्र की भूमिका अभिनीत कर रहे होते हैं उसके सम्बंध में पूरा परिदृश्य विज्यूलाइज़ करने के लिए उसके तकिया कलाम, गाली आदि का प्रयोग भी करते हैं। उसके स्वभाव और चरित्र की कमज़ोरियों को ठट्ठे-ठहाके में बांधने का भरपूर जतन किया जाता है। उनके पास लिखित भूमिकाएं नहीं होतीं। बल्कि परंपरागत ढंग से सीखी हुयी वार्ता में अवसरानुकूल फेर-बदल करके प्रस्तुत करने में वे सिद्धहस्त होते हैं। आवश्यकता-नुसार अथवा फरमाइश आने पर वे तुरन्त भी कोई प्रहसन गढ़ लेते हैं। अपने पेशे के वे विशेषज्ञ होते हैं।

चुप्पी की क्रियाओं द्वारा लोक-रंजन :

मूक अभिनय (माईम) का प्रयोग भी भगतिये खूब करते हैं। शब्द का उच्चारण किए बिना दर्शकों को हंसाना, उनके मन में गुदगुदी पैदा करना इनके बाएं हाथ का खेल है बहुत-से व्यवसायों का प्रस्तुतिकरण इस मूक-अभिनय द्वारा सफलतापूर्ण किया जाता है। उदाहरणतया कुम्हार का चक्का चलाना, इस पर मिट्टी रखकर भांडे घड़ना वगैरह वे अपने हाथों की क्रिया से प्रदर्शित करते हैं। इसके साथ ही एक मूक कथा भी चल रही होती है जो कलाकार के चेहरे से व्यक्त होती रहती है। वह अपनी मूक क्रियाओं द्वारा एक सुस्पष्ट व्यंग्य का सृजन करके बरबस दर्शकों को हंसा-हंसा कर लोट-पोट कर देता है। 'गारड़ी' नामक लोक-गायक के माईम में वह मात्र एक छड़ी की सहायता से आपके मानस चक्षुओं के समक्ष एक मनोरंजक दृश्श उपस्थित करता है। आप महसूस करने लगते हैं कि उसके हाथ में छड़ी नहीं 'किंग' नामक इकतारा है। उससे ध्वनि भी फूट रही है और इस ध्वनि के साथ ही वादक की क्रियाएं आपको हंसने पर बाध्य कर रही हैं।

भगतां का ह्रास :

'भगतां' नाट्य-परंपरा एक परिपुष्ट परंपरा रही हैं। इस विषय में हमने अपनी शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक 'डुग्गर की लोक नाट्य परंपरा' में सविस्तार लिखा है। बहरहाल, तथ्य यह है कि वर्तमान समय में यह परंपरा दम-तोड़ रही है और आहिस्ता-आहिस्ता यह विस्मृति के गर्भ में समाती जा रही है। इसके लिए जिम्मेवार कुछेक कारणों पर प्रकाश डालना अप्रासंगिक नहीं होगा :—

1. स्वतंत्रता के उपरांत तीन मुख्य युद्धों[1] से हमारे सांस्कृतिक मूल्यों पर आर्थिक मूल्यों का दबाव बढ़ा है। मूल्य-वृद्धि तथा जीवन की बदलती

---

1. 1962 ई०, 1965 ई०, 1971ई०

हुयी अपेक्षाओं के कारण गरीब लोगों द्वारा इस मनोरंजन कला को प्रश्रय दे पाने में उनकी प्रकृत असमर्थता प्रमुख कारण है ।

2. 'भगतां' नाट्य का हमारे क्षेत्र में तब तक एकाधिकार था, जब तक यहाँ एलेक्ट्रानिक्स के नए आविष्कार तथा रेडियो, ट्रांजिस्टर, ग्रामोफोन आदि न पहुँचे थे । एलेक्ट्रानिक्स ने लोगों में नयी जागरूकता लाई है । वे सिनेमा तथा मनोरंजन के दूसरे साधनों की ओर आकृष्ट हुए हैं । टेपरिकार्डर तथा टेलीविजन ने तो मानों इस लोक-नाट्य परंपरा को दफनाने के लिए खाई ही खोद दी है ।

3. नयी पीढ़ी में न तो इस लोक-नाट्य को देखने के प्रति उत्साह है और न ही भगतां के कलाकरों की नयी फसल ही उभरकर प्रकट हुयी है । आवश्यकता और उत्पादन (डिमांड एंड प्रॉडक्शन) का रिश्ता न होने से भी यह परंपरा मुरझा रही है । ऐसे में इस परंपरा को सरकारी प्रश्रय प्राप्त हो पाता तो अवश्य ही इसे जीवित रखा जा सकता ।

4. नयी सांस्कृतिक चेतना की अनुभूति ने भगतिये कलाकारों के वंशजों को 'स्टेटस कांशयस' किया है । वे हास्यकला, नृत्यकला तथा संगीत के इस अभिनय-आश्रित त्रि-संगम को हिकारत की दृष्टि से देखने लगे हैं । अब जीवन की भागम-भाग में भगतां खेलकर पड़ोसी के बराबर जीवन-स्तर तथा इज्ज़त-आदर प्राप्त कर पाना संभव नहीं । इसलिए नयी पौध नौकरियों तथा अन्य व्यवसायों की ओर आकृष्ट हुयी है ।[1]

5. स्वतंत्रता के उपरान्त सामाजिक मूल्यों में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ है । पहले लोग किसी व्यवसाय, व्यक्ति या रिवाज़ पर अभिनीत कोमक का लुत्फ उठाते हुये एक-साथ शरीक होते थे । अपनी जाति पर व्यंग्य होते देखकर उन्हें पीड़ा नहीं होती थी । यदि होती भी होगी तो सामंतवादी मूल्यों के विरोध-स्वरूप उभर नहीं पाती थी । परन्तु स्वतंत्रता के बाद तमाम जातियों में एवं व्यवसायों में बराबरी की भावना भी उभरी है और वे आत्म-गौरव के प्रति सचेत भी हुए हैं । यह सब अच्छा है, परन्तु अपने-आप पर ठहाका लगा पाने की लोगों में प्रवृत्ति क्षीण हुयी है और उसके स्थान पर असहनशीलता उभर आई है । बदले हुये ग्रामीण परिवेश में लोक-नाट्य भगतां का मंचन तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक इसमें उपयुक्त परिवर्तन न कर दिए जाएं ।

6. दैनंदिन जीवन में क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों के दखल के कारण भी डोगरा गाँवों में नाट्य सम्बन्धी गतिविधियों को काफी हानि पहुँची है । यहाँ तक

---

1. परन्तु जम्मू का प्रसिद्ध भगतिया कलाकार सेवाराम सोचता है कि नयी पीढ़ी इसे हत्तक या अपमान का विषय नहीं मानती । परन्तु गुज़ारा भी तो चले ।

कि लगभग एक सदी पूर्व हमारे क्षेत्र मे पनपने और प्रचलित होने वाली धार्मिक रामलीला भी इसका शिकार हुयी है। क्लबों के परस्पर झगड़े और दलबद्धता भी रामलीला के विकास में आड़े आए हैं। बहुत से क्लब निजी स्वार्थों के वशीभूत मुकद्दमेबाजी में उलझ रहे हैं। जम्मू के निकट एक गाँव में नवरात्रों में होने वाली वर्षों पुरानी रामलीला बन्द होने का कारण भी कम दिलचस्प नहीं। गाँव के लोगों का कहना था कि राम-लक्षमण तथा अन्य चरित्रों की भूमिका करने वाले लोग कम-से-कम रामलीला के दिनों में शराब-मांस-मच्छी का परित्याग करें। यह शर्त उन कलाकारों को मन्जूर न थी। इसलिए, एक दिन जबर्दस्त झगड़े के बाद यह गतिविधि रुक गई। बहरहाल, कहने का तात्पर्य इतना ही है कि गाँवों के बदले हुए वातावरण में जबकि लोगों की आस्थाएं बदली हैं, रुचियां भी प्रभावित हुयी हैं, तो नाटकीय गतिविधियों में भी रुकावटें खड़ी हो गई हैं।

7. सहनशीलता के अभाव में छोटी-सी बात पर झगड़ा खड़ा हो जाता है। ऐसे असामान्य वातावरण में हास्य-व्यंग्य का कलाकार उचित दाद कैसे ले पाएगा। स्वतंत्रता के बाद गाँवों मे दूसरी भाषाओं का अश्लील साहित्य काफी मात्रा में आया है। भगत लोक-मंच जो आरंभ में शुद्ध त्रि-कला संगम था, ने भी विकृत रुचियों की मांग पूरी करने के लिए बदले हुए परिवेश में ढलने की कोशिश में अपने एकांकियों में फूहड़ता और गीतों में अश्लीलता का पुट बढ़ाया। ऐसा बदली हुयी मनोवृत्तियों के दृष्टिगत किया गया। इसके बावजूद प्रत्येक गांव में कमोबेश ऐसा वर्ग विद्यमान रहता है जो स्वछन्द लोक-रंजन का विरोध करता है। इसी वजह से 'भगतां नाट्य' के कलाकार न इस चाल चल पाए और न उस चाल। और इस तरह गरीब आदमी का लोक-नाट्य अपने जीवन के आखरी श्वासों पर चला आया। □

डोगरी बुझारत : एक अध्ययन

श्यामलाल शर्मा

बुझारत, बुझौवल, प्रहेलिका, पहेली, प्रश्नदूती, गूढ़ वाक्य श्लेष तथा डोगरी में 'प्लौहनी, फ्लौहनी, और कत्थ' प्राय: समानार्थक या पर्यायवाचक शब्द हैं। अंग्रेजी में Riddle, enigma, paronomasia और perplexing question इस आशय को प्रकट करने वाले शब्द हैं। Riddle अधिक प्रचलित और बोध-गम्य है। किसी की बुद्धि या समझ की परीक्षा लेने के काम का एक प्रकार का प्रश्न, वाक्य या वर्णन जिसमें किसी वस्तु का भ्रामक या टेढ़ा-मेढ़ा लक्षण देकर उसे बूझने या अभिप्रेत वस्तु का नाम बताने को कहते हैं।[1] कोई ऐसी बात या ऐसा विषय जो जल्दी समझ में न आये। ऐसी समस्या जो हल न की जा सके।

प्रहेलिका की परिभाषा है—व्यक्तिकृत्य कमप्यर्थं स्वरसार्थस्य गोपनात, यत्र वाह्यन्तरावर्थो, वध्यते सा प्रहेलिका।[2] किसी अर्थ को प्रकट करने और असली अर्थ को छिपाकर जहां अर्थ काव्य के अन्दर या बाहर हो उसे प्रहेलिका कहते हैं।

इसके दो प्रकार होते हैं : आर्थी और शाब्दी।

आर्थी प्रहेलिका का उदाहरण है :—

तरुण्यालिंगत: कण्ठे नितम्बस्थल माश्रित:
गुरुणां सन्निधानेऽपि व: कूजति मुहु र्मुहु:।

नायिका ने गले में बांह डाल रखी है और अपने नितम्ब पर बिठा रखा है। और वह है कि बड़ों के सामने भी बार-बार बोलता है। यह आधा भरा छलकता घड़ा है।

---

1. वृहत् हिन्दीकोश, ज्ञानमंडल काशी बिक्रम् 2030, पृ० 668
2. संस्कृत हिन्दी बोध (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1966, पृष्ठ 683)

नायिका गले में हाथ डालकर और नितम्ब के सहारे उठा रही है और पानी के छलकने की आवाज सब को सुनाई दे रही है। यहां रहस्य अर्थों में है।

शाब्दी प्रहेलिका का उदाहरण इस प्रकार है :—

सदारिमध्यापि न वैरियुक्ता,
नितान्तस्क्ता प्यासितैव नित्यं।
यथोक्तवादिन्यपि नैव दूती,
कानाम कान्ते नि निवेदयाधु।

सदा अरियों (शत्रुओं) के बीच रहती है, परन्तु फिर भी उसका कोई शत्रु नहीं है। सदा रक्त (लाल, प्रेमपूर्वक रहती है फिर भी हमेशा काली होती है। जैसा कहो वैसा ही कह देती है दूती (सन्देशवाहिका) भी नहीं है। हे प्यारी, जल्दी कहो वह कौन है ?

उत्तर : सारिका (मैना)

यहां शब्दों के चमत्कार में रहस्य की महत्ता है। काव्यादर्श में प्रहेलिका के 16 प्रकार दिये हुए हैं। प्रमुख अन्तर्लापिका और वहिर्लापिका हैं।

अन्तर्लापिका में उन्हीं शब्दों में अर्थ निहित होता है।

का काली कामधुरा काशीतलवाहिनी गंगा
कं बलवन्तं न बाधते शीतः ?

प्रश्न के शब्दों में ही उत्तर निहित है।

का काली : काली वस्तु क्या है ?
वाकाली (कौओं की पंक्ति)

का मधुरा : मधुर क्या है ?
कामधुरा (काम में प्रमुख)

काशीतलवाहिनी गंगा : शीतलता प्रदान करने वाली नदी कौन सी है ? गंगा है।

का शीतल वाहिनी गंगा : काशी में बहने वाली गंगा।

कं वलबन्तं न बाधते शीतः ? किस बलवान को शीत तंग नहीं करता ?

कं बलवतं न बाधते शीतः—जिसके पास कम्बल है उसको शीत तंग नहीं करता।

पहेली और उसका उत्तर उन्हीं शब्दों में निहित है।

वहिर्लापिका में अर्थ का बाहर से आरोप होता है।

जैसे : धीर : कीहक् वच: ब्रूते : को रोगी

नश्च नास्तिक:

अर्थवदधातुऽ प्रत्यय प्रतिपदकम् ।

धीर: कीहक् वच: ब्रूते ? धीर कैसी वाणी बोलता है !

उत्तर है : अर्थवत् = सार्थक

क: रोगी ? रोगी कौन है ?

उत्तर है अधातु : (वीर्यहीन व्यक्ति)

क: च नास्तिक: ? और नास्तिक कौन होता है ?

उत्तर है अप्रत्यय: अविश्वासी

ईश्वर में विश्वास न रखने वाला ।

अंग्रेजी शब्द Riddle वास्तव में ऐंग्लो-सैक्सन शब्द है ।

raedels । धातु raedan, अर्थ है पढ़ना to read उच शब्द है raadsel और जर्मन, ratsel, words having double meaning, ambiguity, paronomasia, pun, hidden meaning. द्वयर्थक शब्द, अस्पष्ट शब्दार्थ शब्दालंकार, श्लेष, गुह्यार्थ इत्यादि अनेक अर्थ हैं ।[1] वैदिक काल में प्रहेलिका बुझारत को ब्रह्मोदय कहा जाता था । अश्वमेध यज्ञ में ब्रह्मोदय तो अनुष्ठान का भाग होता था । यजमान (होता) और ब्राह्मण ब्रह्मोदय पूछते थे । यह अधिकार केवल यजमान और ब्राह्मण को ही होता था ।[2]

फ्रेजर (J.G. Frazer) महोदय प्रसिद्ध पुस्तक (The Golden Bough) में कहते हैं कि पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब विशेष कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ी होगी । पहेली में एक अधूरा चित्र निर्मित होता है । उससे अभिप्रेत वस्तु का बहुत अधूरा संकेत मिलता है । अधूरे चित्र से वास्तविक वस्तु का पता लगाने में बुद्धि की परीक्षा होती है ।

पहेली में प्रश्न के रूप में या कथन के रूप में आंशिक वर्णन होता है । बाकी बूझने वाले को स्वयं ढूंढकर उस संकेत की पूर्ति करनी

---

1. मानक अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1971 पृष्ठ 1165 कालम 2
2. हिन्दी साहित्यकोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड काशी विक्रम् 2015 पृष्ठ 446.

होती है।[1] उदाहरण के लिये "वह क्या है जो प्रातःकाल चार पांवों पर चलता है, दोपहर को दो पांव पर और सायं को तीन पांव पर चलता है?" इसका उत्तर है—मनुष्य। बचपन में वह हाथ और पांव पर रेंगता है। जवानी की दोपहर में अकड़कर दो पांव पर चलता है। और बुढ़ापे की सन्ध्या में लाठी के सहारे तीन पांव पर चलता है।

पहेली एक Puzzling Question होता है।[2] उलझन में डालने वाला प्रश्न होता है। साम्राज्ञी शेवा ने सम्राट सुलेमान से पूछा—वह क्या है जिसके दस द्वार हैं। जब एक खुला होता है तो नौ बन्द होते हैं। जब वह एक बन्द हो जाता है तो बाकी नौ खुल जाते हैं। बादशाह ने जबाव दिया कि वह मानव शरीर है। मानव शरीर के दो आंखें, दो कान, दो नासिकाएं, एक मुंह, एक गूदा और एक उपस्थ नौ द्वार हैं। नाभि दसवां द्वार है। बच्चा जब माता के पेट में होता है तो नाभि वाला द्वार खुला होता है। बाकी बन्द होते हैं। पेट से बाहर आने पर जब नाभि की नाली काट दी जाती है तो वह नाभि द्वार बन्द हो जाता है। तब बाकी नौ द्वार काम करने लगते हैं।

इसी प्रकार एक हिन्दी की पहेली है—"बिना पंख के उड़ता पक्षी, बिना हाथ के देव खा गया।"

शीत प्रधान देशों में हिमपात के समय बर्फ के गोले उड़ते देखकर किसी ने 'बिना पंख के उड़ता पक्षी' कल्पना की है। और जब सूर्य देवता उसे पिघला देते हैं तो 'बिना हाथ के देव खा गया—हलका संकेत भी दे दिया। इसी प्रकार एक वृक्ष की बारह शाखें। एक वर्ष के बारह महीने अर्थ दर्शाने वाली पहेली है।

पहेलिया सोचने की शक्ति और रूपक बान्धने की सामर्थ्य का विकास करती हैं। मन बहलाना और पारस्परिक मेल-मिलाप तथा रंग-रौनक का विशेष साधन होती हैं। दिमाग को तेज करती हैं। कल्पना-शक्ति को बढ़ाती हैं। मौखिक रूप से शिक्षा देने का बड़ा सुगम साधन होती हैं। जीवन का कोई पहलू इनसे छूटा नहीं है। प्रकृति, जीव-जन्तु, फसलें, फल-फूल, दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएं सब पर 'जोर आजमाई' हुई है। राजस्थान में कितने ही राज्यों में राजकुमारों के मन बहलाने के लिए प्रहेलिकाओं की हस्तलिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं। हिन्दी में तथा भारत की अन्य भाषाओं में पहेलियों के संग्रह मौजूद हैं। इनका तुलनात्मक अध्ययन बड़ा रोचक विषय है। कुछ वर्ष हुए डोगरी

---

1. Areader's Guide to Literary terms by Kail Beckson and Arther Ganz. P.P. 107 Riddle.
2. Dictionary of World Literary terms by Shipley. P.P. 279—280.

भाषा में 'बझारत कोश भाग —1' का प्रकाशन हुआ जिसमें एक हज़ार के लगभग बुझारतें संगृहीत हैं।[1] श्री शिवराम 'दीप श्री बालकराम', 'वराल' और श्याम लाल शर्मा के फुटकर लेख भी उपलब्ध हैं।

बुझारतों का विश्लेषण किया जाये तो प्रकृति से लेकर दैनिक जीवन की सब वस्तुओं का सम्पर्क प्राप्त हो जाता है। प्रकृति में आकाश, तारे, विद्युत, साल, महीने, दिन, चांद, सूर्य, ओले, ओस आदि सम्बन्धी बुझारतें विद्यमान हैं। कृषिक जीवन में हल चलाता किसान, हल चलाये खेत को समतल करता (सुहागा फेरता) भिन्न-भिन्न फसलें—कपास, जौ गन्दुम, मक्की इत्यादि पर मस्तिष्क ने जोर-अजमाई की है। फल-फूल, साग, सब्जी और भोजन पर अनेकों बुझारतें दिमागी कसरत कराती हैं। ग्रामीण जीवन में दैनिक सम्पर्क में आने वाले जीव जन्तु सांप, मेण्डक, दीपक, जूं, भिड़ आदि दृष्टिगोचर होते हैं। शरीर सम्बन्धी दांत, जीभ, आंखें। पारिवारिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएं चक्की, चर्खा, छाछ बिलोने की चाट्टी, मधानी, आग, कोयले, लकड़ी, हुक्का, चिलिम इत्यादि अनेकों वस्तुएं हैं। यथासम्भव तुलनात्मक प्रयास के साथ कुछ डोगरी बुझारतों का आस्वादन वांछनीय होगा।

आकाश और तारे ऐसे विषय हैं जो प्रत्येक के सामने रहते हैं।

1. एक थाल-मोतियन भरा, सबके सिर पर औन्धा धरा,
   चारों ओर थाल वह फिरे, मोती उसमें एक न गिरे।

2. नीली चादर में चावल बान्धे,
   दिन में गायब रात को मिले।

यही भाव डोगरी की इन बुझारतों में प्रकट हैं :

1. कालिया बुक्कलिया तिल छपैले,
   दिनें छप्पे रातीं लब्बे,
   काली कम्बली में तिल छिपाए हैं, दिन को मिलते नहीं, रात को
   दिखाई देते हैं।

2. नीली क़म्बली तिल बद्धे
   दिनें गुआचे रातीं ल'ब्बे।
   नीली कम्बली में तिल वांधें, दिन को गुम रहते हैं और रात को
   मिलते हैं।

---

1. सन्तोष प्रकाशन, जम्मू। सं. कृष्णलाल वर्मा—1980

3. डुग्गी डबर कोई डुबने आला नेईं ।
खु'ल्ली गेआ रमाल कोई चुनने आली नेईं ।
कैंसी सोह्‌बी सेज कोई सौन्दा नेईं
चमेलिया खिलेआ बाग कोई चुनने आला नेईं ।

4. अक्खनी मक्खनी, रातीं भरी दिनें सक्खनी

चांद और सूरज विषयक पहेलियां दिलचस्प हैं—

1. ईश्वर का दिया सिर पर ।

2. काली मां के गोरे पूत,
उन दोनों की नई करतूत ।
भाई को भाई से लाग,
एक हो ठण्डा एक हो आग ।

डोगरी में—

1. नीली थाली इच इक पेड़ा, न तेरा न मेरा ।

2. चार चफेरै कोट, उत खेलन दो बनजारे
इक जादा, इक आवै दा फ्ही बी मेल नेईं होआ दा ।

3. चिट्टी चादर चार कनारे, एड्डी दिल्ली दो बनजारे ।

साल महीने दिनों के विषय में पहेलियां हिन्दी, डोगरी में काफी मिलती-जुलती हैं—

1. एक सन्दूक में बारह खाने
हर खाने में तीस-तीस दाने ।

2. एक झाड़ी तीस डाली—
आधी सफेद—आधी काली ।

डोगरी में तुलना कीजिए—

1. इक बाड़ी इच बारां बन्ने
इक-इक बन्ने दे त्रीह्‌-त्रीह्‌ गन्ने ।

2. इक मुन्ढ ते बारां डाह्‌ल
त्रीह्‌-त्रीह-पत्तर सबनीं नाल ।

3. इक थ'म्म बारां कड़ियां—त्रीह्‌-त्रीह्‌ लड़ियां ।

4. दिक्खेआ दपट्टा बारो पट्ट,
जिसी धागे लग्गे दे त्रै सो सट्ट ।

ओस (डोगरी त्रेल) सम्बन्धी पहेलियों की समानता भी दर्शनीय है—

औघट घाट घड़ा नहीं डूबे,
हाथी खड़ा न्हाय ।
पीपल पेड़ फतङ तक डूबे,
चिड़िया प्यासी जाए ।

तुलना कीजिए :—

1. **सुत्थन सिज्जै सने चूड़ियां,**
जोड़ा डोबे खा ।
ऐसा सर नेईं दिक्खेआ,
चिड़ी त्रेहाई जा ।

2. **रुक्ख डुब्बा सनें पुम्बलियें ।**
हाथी मल-मल न्हा ।
घड़ा नेईं डुब्बै उस पानिया,
चिड़ी त्रेहाई जा ।

इसी प्रकार 'ओले' की पहेली है—

यहां नहीं वहां नहीं, शहर के बाजार में नहीं,
छीलो तो छिलका नहीं, चूसो तो गुठली नहीं ।

डोगरी में पहेली है—

1. पारा आये आमले बिच गुठली ऐ नेईं ।
2. छिलचै तां छिल्लड़ नेईं, खाचै तां गुली नेईं ।
3. अमृतफल कपूरफल, जिस फल बिंडू नेईं ।
4. अज्ज खादा कल बिस्सरेआ, दुनिया पर नेईं ।

'आम' के विषय में यह पहेली बड़ी प्रसिद्ध है—

वर्षा बरस देस में आवे,
मुंह से मुंह लगा के रस प्यावे ।
इस खातिर खर्चे मैं दाम,
ए सखि साजन, न सखि, आम ।

डोगरी में आम सम्बन्धी पहेलियां हैं :—

बब्बै-पुत्तरै दा इक्कै नां,
पुत्तर फिरै ग्रां-ग्रां ।

पुत्तरै जाई बेटी,
बेटी जम्मी धरत पर ।
बेटी नै जाया बब्ब,
दिक्खो लोको कलजुग ।

2. इसकी मिढकी हिरण चाल
ऐसा मिरग देखेआ, जिदे ढिड्डै अन्दर बाल

बगुला भगत के विषय में डोगरी की पहेली है—

जलै कण्ढै समाधी लान्दा, चौरे पैह्र इक्को ध्यान,
ऐसा जोगी नेई दिक्खेआ, जेह्ड़ा खड़ोता र'वै इक जंघै दे भार ।

सांप विषयक पहेली—

चोर आया चोरी करन उस लत्तां गै नेई ।

मच्छर के विषय में उर्दू कवि ने कहा है कि—

पश्शा से सीखे पेशा ए पर्दमिगी कोई
जब कर देखूं पै आवे तो पहले पुकार दे ।

(किसी ने बहादुरी सीखनी हो तो मच्छर से सीखे । जब वह कत्ल करने का इरादा करके आक्रमण करता है तो पहले घोषणा कर देता है)

डोगरी में पहेली है—

1. चलदा फिरदा बीन बजांदा ।

2. बिना बौंसरी राग सुनावे
दिनें र'वै दुआस रात को बड़ी पकावे
सप्प सींह से न डरे, सामने आकर लड़े ।

जूं के विषय में—

इन्नी सारी कुड़ी राजे सिरा पग्ग तुआरदी ।

मक्खी—

इन्नी सारी कुड़ी राजे कन्ने भत्त खन्दी ।

सूई—

इन्नी सारी कुड़ी गज-परान्दा लेई टुरी—
(जरा सी बिटिया, गज भर चुटिया)

दीमक—

इन्नी क बिन्द, जीरे जिन्नी जिन्द
हग्गै मेरी साह्बनी, कोह्ल्लै जिन्ना लिड,

दीमक कितनी छोटी होती है, परन्तु बल्मीक का ढेर कितना बढ़ा लगा देती है।

कुल्हाड़ी—

घरा जन्दी चुप चपीती,
जाड़ै दिन्दी आले।

कैंची —

फिट्टे मुंह बड्डी तेई
जिन्न बक्ख-बक्ख कीते।
(बड़ी को धिक्कार है कि उसने टुकड़े-टुकड़े कर दिये)

सूई—

शाबाश निगड़ी तेईं,
परतियै किट्ठे कीते।

(छोटी को शाबाश है कि उसने पुनः जोड़ दिए)

आरी—

इन्नी सारी कुड़ी दो सौ दन्द।
(छोटी-सी लड़की है दो सौ दान्त हैं)

उस्तरा—घम्म घट्ट, सौ डाह्ल्ला इक फट्ट।
(एक ही वार में सौ शाखाएं काट देता है)

मक्की—

अट्टी पर पट्टी पर गन्ना नेईं,
सुंलसुले पत्तर पर केल्ला नेईं।
उप्पर जटा पर साधु नेईं,
गिद्दी ब'न्नी दी पर जनानी नेईं।

(पट्टीदार पौधा है परन्तु ईख नहीं। लिपटे हुए पत्र हैं परन्तु कदली वृक्ष नहीं, सिर पर बाल हैं परन्तु साधु नहीं। वस्त्रावेष्टित है परन्तु महिला नहीं।)

प्याज़—

इन्ना हारा रामदास, कपड़े लान्दा सौ पचास
(छोटा सा रामदास है परन्तु सौ पचास कपड़े पहने हैं)

धनिया—

हरी-हरी डण्डी हरे-हरे पत्तर,
सुन्ने दे घुंगरु चान्दी दे छत्तर ।
(सब्ज डाली है, सब्ज पत्र हैं। सोने के घुंघरू हैं और चांदी के छत्र हैं)

मिरच—

इक कत्थ पां थुआड़ा नक्क बड्डी खां ।
(एक बुझारत पूंछू तुम्हारा नाक काट खाऊं।)

काशीफल—

मा पत्तली-पतंग, पुत्तर चुट्ट मुट्ट,
नेईं चकोन्दा भुभा सुट्ट ।
(माता दुबली-पतली कृशकाय है। पुत्र गोल मटोल भारी है। नहीं उठाया जाता तो ज़मीन पर फैंक दो)

पुस्तक—

चिट्टी जिमीं काले छोले,
हत्थें राहे मुंहां बोले ।
(सफेद ज़मीन पर काले चने हाथ से बोये परन्तु उच्चारण मुख से होता है)

गन्ना (गुड़)—

इक चर्जें दी गल्ल सनाना सुनेआं म्हाड़ेआ वहीमा
लक्कड़ियै दा पानी बनेआ, पानियां दियां ढीमां,
(हे मेरे वैद्य एक आश्चर्य की घटना सुनाता हूं। लकड़ी में से पानी निकला, और पानी के कंकर बने)

अंडा—

रानी रानी सुनो मेरी कहानी,
इक्क मट्ट इच दो रंग पानी ।
(हे रानी, मेरी कहानी सुनो। एक मटके में दो रंग का पानी है)

चूज़ा—

कच्चू दा गलास, बिच बैठा रामदास ।
चीनमचीनी कोठड़ी दर्वाजा कोई नेईं ।
(कांच के गिलास में रामदास बैठा है, सफेद मिट्टी की कोठड़ी है और द्वार कोई नहीं)

ऐनक—

नक्कै पर बहियै पगड़ै दोऐ कन्न,
छोकर दस्सन शान, ते बुड्ढे होन परसन्न।

(नाक पर बैठ कर दोनों कान पकड़ती है। बच्चों के लिए शान की बात होती है और बूढ़े प्रसन्न होते हैं)

बुझारतें लोक-साहित्य का अनुपम भण्डार हैं।

इसके लिए सर्वेक्षण की आवश्यकता है। बुझारतें हमारा सांस्कृतिक भंडार भी हैं। इनके संग्रह से हमारी संस्कृति की रक्षा होती है। प्रादेशिक बुझारतों के तुलनात्मक अध्ययन से देश की संस्कृति के आदान-प्रदान का ज्ञान होता है। संगृहीत बुझारतों का अर्थ किया जाये तो उत्तर जानने के साथ-साथ बहुत सी रीतियों और सांस्कृतिक विधियों का ज्ञान प्रकट होता है।

□

जम्मू के मेले और त्योहार

☐ विश्वनाथ खजूरिया

मेले और त्योहार प्राचीन काल के मानव की सामाजिक सूझ-बूझ के साक्षी हैं। लगातार मेह्नत-मुशक्कत की टूटन और थकान को दूर करने और जीवन की दौड़ के लिए अपने आपको पुन: तैयार करने के लिए, मन बहलावे के दूसरे साधनों के अलावा साल भर के लिए 'रिक्रिएशन' के लिए ही मेले और त्योहारों का चलन हुआ था। आज के खेल-तमाशे तो उन दिनों मानव सोच के क्षितिज से दूर परे थे।

मेले-त्योहार और मौज-मेले मनाना मानव की मूल प्रवृत्ति है और संसार-व्यापी है। मनोरंजन के ढंग और तौर-तरीके अलग-अलग हो सकते हैं, किन्तु उनकी भावना और प्रेरणा के स्रोत तो एक ही हैं।

समाज-शास्त्र और सभ्यता-संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान—सर डब्लयू जोन्ज़ ने अपनी पुस्तक—'History of the Primitive World' में लिखा है—"...If the festivals of the old Greeks, Romans, Persians and Egyptians could be arranged with exactness in the same form with the Indians, there would be found a striking resemblance among them and a comparasion of them might throw great light on the religion and perhaps the history of the primitive world..."

("...यूनान, रोम, ईरान और मिश्र आदि देशों के प्राचीन त्योहारों का मेलान यदि भारतीय मेले-त्योहारों से बारीकी से किया जाये तो उनका निजी सम्बन्ध और मेल-मिलाप देखकर हैरान रह जाना पड़ेगा और उनका सम्बन्ध तुलनात्मक अध्ययन करने पर उनके धर्म और इतिहास के बारे में कुछ नए तथ्य हाथ लगेंगे...")

मन बहलाव के साथ-साथ मेले और त्योहारों का राष्ट्रीय एकता के गठन में भी बड़ा योगदान होता है। उत्तर और दक्षिण भारत के तीर्थ-स्थान और उन पर लगने वाले मेलों का उत्तर दक्षिण भारत के राष्ट्रीय एकीकरण में बड़ा योगदान है।

जम्मू प्रदेश में बसने वाले हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख आदि के कुछ निजी और कुछ सांझे त्योहार हैं, जो हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं।

जम्मू के मेले—हमारे यहां अनेक मेले बलिदानी महापुरुषों, रण-सूरमाओं, 'पहुंचे हुए सन्तों-फकीरों और सति-सत्यवंतियों की पुण्य-स्मृति में, कुछ देवस्थानों पर लगते हैं और कुछ फसलों और ऋतुओं से सम्बन्ध रखते हैं।

देश-धर्म के लिए शहीद होने वालों की करणी से प्रेरणा मिलती है कि देश-भक्ति और बलिदान की, सरफरोशी की तमन्ना बनी रहे। जोत से जोत जलती रहे।

धिङ बैसाखी का मेला—जम्मू-अखनूर रोड पर नागबनी नाम का मुकाम बड़ा रमनीक है। यहां बड़ी पहुंच वाले (जन्नत नशीन) बाबा मोंगा पीर की समाधी पर बैसाखी के तीसरे रोज "धिङ बैसाखी" का बड़ा भारी मेला, मोंगा पीर की स्मृति में लगता है, जिसमें जम्मू-अखनूर के दूर-पार के हिन्दू, मुसलमान, हरिजन भारी संख्या में भाग लेते हैं।

बाबा मोंगा ने क़िसी कारणवश गुजरात (पंजाब) से आकर नागबनी की रक्ख में अपना तकिया बनाया था। आप करामाती फकीर थे और बिना भेदभाव के लोगों का दुख-दर्द दूर कर देते थे। आपका मज़ार (समाधि), आपकी ही अन्तिम इच्छानुसार अभी तक कच्चा ही है। हिन्दू-मुसलमान हर वीरवार को वहां दिए जलाते और मन्नतें मानते हैं।

इसी मजार पर धिङ बैसाखी का मेला लगता है। लोग चढ़ावे चढ़ाते और मन्नतें मांगते हैं। इस मेले का एक आकर्षण है, "डोगरा भांगड़ा" जिसकी विशेषता है कलापूर्ण सादगी। नाच के अलावा दंगल भी होते हैं।

बैसाखी के मेले—बैसाखी तक आषाढ़ी की फसल पक कर तैयार हो जाती है। इस खुशी में किसान और दूसरे लोग भांगड़े की टोलियों में मेले के स्थान पर पहुंचते हैं और ढोल की थाप और घुंघरूओं की झनकार पर अपनी नृत्यकला से मेले में आई जनता का मनोरंजन करते हैं।

ऐसा ही मेला जम्मू शहर की नहर पर लगता है। मिट्टी के बर्तनों, मन्यारी आदि की दुकानों की भरमार होती है। जगह-जगह भांगड़े आदि की दिन भर भरमार रहती है।

पुरमंडल में गुप्त-वासिनी देवक नदी के किनारे-किनारे उत्तरवैहनी तक मेला छाया रहता है। इस रोज देवक अशनान का विशेष महातम माना जाता है, इसलिए मेले में आए लोग सवेरे-सवेरे अशनान और देव-दर्शन से निबटकर मेले में भांगड़ा और लोक-गीतों का आनन्द लूटते हैं। दूर-पार से लोग बैसाखी की पहली शाम को ही पुरमंडल में पहुंच जाते हैं। रात भर कथा वार्ता और भजन-कीर्तन से वायुमंडल गूंज उठता है। जम्मू-साम्बा, रामगढ़ के आसपास से हजारों ही मर्द-महिलाएं और बे-शुमार बच्चे मेले में आते हैं।

ऊधमपुर में भी देवक के किनारे बैसाखी का मेला लगता है, जिसमें आस-पास के इलाके से अनगिनत लोग जमा होते हैं। सरकारी तौर पर पशुओं और दस्तकारियों की नुमाइश लगती है। मेले की रौनक दो दिन तक बनी रहती है।

रामनगर में यह मेला तीन दिन तक चलता है। एक दिन गुरलांग में बिंदरावन नाले के किनारे, दूसरे दिन डालसर गांव में और अन्त में कस्बा रामनगर में समाधियों और किले के आसपास। आसपास के पहाड़ी इलाके से सैंकड़ों लोग इस में शामिल होते हैं। उस रोज़ यहां दंगल भी होता है, जिसमें दूर-दूर से आकर पहलवान भाग लेते हैं।

चन्द्रभागा नदी के किनारे—रामबन, रियासी और अखनूर में भी बैसाखी का भारी मेला लगता है। झील मानसर और उज्झ नदी के समीप ऐरमा नाम के गांव में शिव मन्दिर के पास बैसाखी का भारी मेला लगता है, जिसमें कठुआ, हीरानगर और पहाड़ी इलाके के लोग बड़ी संख्या में आते हैं। मैदानी इलाके का भांगड़ा दिन को और रात को पहाड़ी नाच 'ढेकू' और पहाड़ी और मैदानी लोक-गीतों की मधुर धुनें मेले में सोने पर सोहागे का काम करती हैं।

जम्मू के प्राचीन इतिहास में 'ऐरमा' ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। कभी ऐरावती (रावी) नदी इस गांव के पास से होकर बहती थी। इसीलिए इसका नाम 'ऐरमा' पड़ा था।

बसोहली में "नीलकंठ महादेव" के मन्दिर के सामने और बिलावर में भी "विल्लेश्वर महादेव" के मन्दिर के सामने बैसाखी का भारी मेला लगता है। इन दोनों जगह मेले पर पहाड़ी घरेलू दस्तकारियों और उन्नत पशुओं और बीजों आदि की नुमाईश भी लगती है। उस मन्दिर के अन्दर बड़ा भव्य शिवलिंग विराजमान है।

जम्मू-पठानकोट राजमार्ग पर, जम्मू से 24-25 किलोमीटर की दूरी पर, सड़क से कुछ दूर पश्चिम में 'सिद्ध सोआंखा' नाम का पवित्र स्थान बड़े करामाती और पहुंचे हुए नाथ-पंथी योगी, सिद्ध गोरिया के नाम पर बसा है। यहां योगियों की बहुत समाधियां और एक कच्चा तालाब है। कहते हैं कि उसी तालाब में योगी

सिद्ध गोरिया ने जल समाधि ली थी। लोक-मान्यता है कि उस तालाब में अशनान करने से कई रोग दूर हो जाते हैं और तालाब की गीली मिट्टी का लेपन करने से चर्म रोग हट जाते हैं। योगी सिद्ध गोरिया, योगीराज गुरु गोरखनाथ जी के मुख्य शिष्य थे। सिद्ध गोरिया जी की याद में सिद्ध सोआंखे में आषाढ़ मास के पहले ऐतवार को भारी मेला लगता है जिसमें जम्मू, साम्बा और पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश आदि से सैंकड़ों श्रद्धालु आते हैं--मन्नतें मानते और मुरादें पाते हैं।

योगी सिद्ध गोरिया के अतिरिक्त जम्मू प्रदेश के महान बलिदानी, करामाती सिद्ध-सन्तों, फकीरों, औलियों और महान योद्धाओं की यादगार के तौर पर मेले लगते हैं।

बाबा जित्तमल (जित्तो) जम्मू प्रदेश के महान बलिदानी हो गुज़रे हैं। आपका जन्म आज से लगभग साढ़े पांच सौ साल पहले, कटड़ा वैष्णो देवी के पास अघार गांव में एक किसान ब्राह्मण के घर हुआ था। आप आत्मसम्मानी, और आन-मर्यादा वाले किसान थे। सामेचक्क (झिड़ी) के जागीरदार विधिसिंह से नौतोड़ जमीन लगान पर लेकर आपने काश्त की। लगान के बारे में जागीरदार की धांधली का जित्तमल ने डटकर मुकाबला किया। जागीरदार के आगे झुकने की बजाए उन्होंने अपना बलिदान कर दिया था।

उसी बलिदान की स्मृति में उनके जन्मदिन (नवम्बर मास की पूर्णिमा को, जोकि गुरु नानक देव जी का भी जन्म दिन है) पर झिड़ी में हर वर्ष बड़ा भारी मेला लगता है जो कि सात दिन तक चलता है। इस मेले में जम्मू के इलावा पंजाब, हरियाणा और हिमाचल आदि से भी सैंकड़ों लोग आते हैं। जागीरदार, उसके सम्बन्धी और धांधली में शरीक लोक जो बाबा जित्तो के बलिदान के कोप से डर कर जम्मू से भाग कर चले गये थे, उनके वंश-दर-वंश के लोग अब भी इस मेले में आते और जित्तमल की "कारक" के बोल सुन कर समाधि के आगे माथा रगड़ते और अपनी नंगी पीठ पर लोहे के झुंडे मारते हैं [यह मनोविज्ञान विश्लेषण की भाषा में 'मनोविज्ञानक ताड़ना' कहलाता है]

कैसा भयानक और भीषण था उस अन्याय का कोप ! जन विश्वास इतना प्रबल है कि श्रद्धालु लोग, रोग मुक्त होने या सन्तान प्राप्ति के लिए जित्तमल की समाधि के आगे मन्नतें मांगते हैं और मुरादें पूरी होने पर वहां भेंट चढ़ाते और कन्या पूजन करते हैं।

रियासत जम्मू-कश्मीर से जागीरदारी के खातमे के आन्दोलन में बाबा जित्तमल के बलिदान की टेक की गई थी।

बाबा जित्तमल के ही समकालीन थे, बाबा—महीमल्ल। उन्होंने भी

जागीरदार की धांधली के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी । उसके आगे झुकने की बजाए अपना बलिदान कर दिया था । उनकी समाधि अखनूर के पास के एक गांव में है । वहां जून महीने में आस-पास के इलाके के लोगों का भारी मेला लगता है। मेले मे जगह-जगह 'गारड़ी' (लोक-गायक) यात्राएं करते और महीमल्ल और जित्तमल्ल की कारकें गाते हैं । कई लोगों को ''भार चढ़ता है'' ।

बलिदान की इसी कठिन पगडंडी की राही थीं शहीद वीरांगना, बुआ भागाँ । वह भी बाबा जित्तो और बाबा महीमल्ल की समकालीन थीं । आप तहसील बसोहली में थ'ड़ा कलवाल गांव की रहने वाली थी । किसी भडवाल राजवाड़े ने ज़मीन के लगान में वृद्धि कर दी । उसका मुखिया वसूली करने आया तो बहुत से काश्तकारों ने डर के मारे लगान में वृद्धि जैसे-कैसे बन पड़ा अदा कर दी, किंतु बुआ भागां उस अन्याय के आगे न झुकी—मर्दानावार डट गई । जब मुखिया की जोर-जबरी हद से बढ़ी तो हार मानने के बजाए उस वीरांगना ने आत्म-बलिदान कर दिया । बुआ जी की थ'डा कलवाल में बनी पवित्र समाधि पर हर साल ज्येष्ठ महीने मेला लगता है, जिसमें आस-पास के इलाके से काफी खलकत आ जुटती है ।

अमर बलिदानी और महान शूरवीर बाबा बंदा वैरागी का बे-मिसाल बलिदान इतिहास की रोमांचकारी त्रासदी है । उस बलिदान की स्मृति में रियासी के दक्षिण में चन्द्रभागा के किनारे, 'डेरा बाबा बंदा वैरागी' में बनी पवित्र समाधि पर हर साल बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें रियासी, राजौरी, जम्मू आदि से सैंकड़ों लोग जमा होते हैं । लोग पवित्र समाधि पर श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं । ऐसे ही पवित्र स्थान के बारे किसी ने क्या खूब लिखा है :—

''शहीदों की समाधि पर लगेंगे हर बरस मेले ।
धर्म पर मरने का यही कौमी निशां होगा ।।''

जम्मू में तवी के बाएं किनारे पर बाग़-ए-बाहू के निकट खजूरिया पुरोहितों के आदि पुरुष श्री बाबा अम्बो जी के स-परिवार बलिदान स्थल पर, उनकी पवित्र समाधि पर उत्तरायण के पवित्र पर्व पर खजूरिया बिरादरी वालों का भारी मेला लगता है, जिसमें जम्मू प्रान्त, पंजाब और अन्य प्रान्तों से खजरिया भाई-चारा के लोग जमा होते हैं । बाबा जी के जीवन सम्बन्धी सेमिनार, यज्ञ-हवन और बिरादरी का भण्डारा भी होता है । नव वर-वधु पवित्र मोहरों के आगे सीस झुकाते और कुछ लोग मन्नतें मांगते हैं ।

मोंगा पीर और योगी सिद्ध गोरिया की समाधि पर लगने वाले मेले के सिलसिले में किश्तवाड़ के शाह फरीद-उद्-दीन, जम्मू के पीर रोशनशाह वली, पीर बुड्डन अली शाह और पीर मिट्ठा और पीर खोह के आदि पीर, योगी गरीब नाथ जी से सम्बन्धित मेलों का ब्यान भी जरूरी है ।

पीर रोशनशाह वली का मज़ार गुमट दरवाज़े से शहर में प्रवेश करते ही बाज़ार के बाएं हाथ बना है, जोकि "नौ गज़ा पीर का मजार" कहलाता है। पीर जी बड़े पहुंचे हुए फकीर और बलिष्ठ थे और लम्बे-चौड़े कद के मालिक थे। जम्मू का शूरवीर राजा मालदेव पीर जी का बड़ा भगत था। अपने तप-तेज से पीर जी, बिना किसी भेद-भाव के लोगों को रोग-मुक्त कर देते थे।

आपके मज़ार पर हर वीरवार को मेला लगता है। इस पवित्र मजार पर कई लोग अब भी मन्नतें मानते हैं।

पीर बुड्डन अली शाह का मजार जम्मू में हवाई अड्डे के पास है। आप गुरु नानक देव जी के समकालीन थे। एक बार गुरु महाराज पीर जी के पास आए भी थे। पीर जी बड़े करामाती माने जाते थे। वह बीमारों के रोग दूर कर देते थे।

आषाढ़ महीने के पहले रविवार को आपके उर्स पर बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें हज़ारों हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख शामिल होते हैं। उस मजार पर लोग आज भी मन्नतें मानते और मुरादें पाते हैं।

किश्तवाड़ में (जन्नत नशीन) शाह फरीद-उद-दीन की बड़ी मशहूर ज्यारत-गाह (समाधि) है। शाह साहिब बड़ी पहुंच वाले और मान्यता प्राप्त फकीर थे। वह निराश रोगियों को भी भला-चंगा कर देते थे और लोगों की मुरादें पूरी कर देते थे। उनकी याद में किश्तवाड़ में भारी उर्स लगता है, जिसमें सब धर्मों के लोग शामिल होते हैं।

किश्तवाड़ से 20 कि० मी० दूर, एक ऊंची पहाड़ी पर अठारह भुजी सरथला देवी का मन्दिर है। रास्ते की कठिनाई के बावजूद, नवरात्रों के मेले में जम्मू-कशमीर, हिमाचल आदि से सैंकड़ों यात्री यहां आते हैं। जन-विश्वास है कि देवी जी की कृपा से निराश लोगों की मुरादें भी पूरी हो जाती हैं। साल के दोनों नवरात्रों में यह मेले यहां लगते है।

भद्रवाह का "पट्ट" मेला—भद्रवाह के "मेला पट्ट" या "पटेरू कुड्ड" की जम्मू-पंजाब और हिमाचल प्रदेश आदि में बड़ी धूम है। यह मेला कैलाश यात्रा के सात दिन बाद, सावन महीने में भद्रवाह नगर में, पुराने राज महलों के पास, वासुकी नाग मन्दिर के आंगन में लगता है। यह मेला उस 'पट्ट' या रेशमी सरोपे की याद में मनाया जाता है, जो मुगल सम्राट अकबर ने, भद्रवाह के राजा नागपाल को उसकी आत्म-सम्मान की भावना और उसके शौर्य पर, सम्मान के तौर पर प्रदान किया था।

दिल्ली से वापस आकर राजा ने तीन दिन तक उस "पट्ट" का आम प्रदर्शन किया था। उसी की याद में यह पट्ट मेला तीन दिन तक लगता है।

मेले की लोकप्रियता के कारण भद्रवाह भर में तीन दिन तक सरकारी छुट्टी रहती है। वह "पट्ट" सवेरे से सायंकाल तक प्रदर्शन के लिए रखा रहता है।

एक भद्रवाही कवि ने 'पट्ट' मेले के बारे में लिखा है—

"...भद्रवाह में हर साल पट्ट मेला लगता है,
जिसे बूढ़े-जवान, बच्चे सभी देखते हैं।
बादशाह को झुक कर सलाम नहीं की,
और न ही 'राम-राम' बाचा था...... (मूल भद्रवाही का भावार्थ)

मेले में पहाड़ी नाच 'ढेकू' और पहाड़ी लोक-गीतों की बहार रहती है।

नाग देवता का 'चेला' उस पट्ट को परम्परा के अनुसार जलूस में, बाजे-गाजे के साथ राज गुरुओं की स्पुर्ददारी से मेले में लाता और उसी शान से हर शाम को गुरुओं के सुपुर्द कर देता है।

भद्रवाह का दूसरा बड़ा मेला, भद्रवाह नगर से 20-21 कि॰ मी॰ दूर, 'सुबर धार' पर वासुकी नाग के देवस्थान पर लगता है। मन्दिर में नागराज की काले पत्थर की सुन्दर मूर्ति स्थापित है।

पहाड़ी देवस्थानों के समान यह मन्दिर भी शीतकाल में बन्द रहता है और वैसाखी के दिन इसके पट खुलते हैं और उसी दिन 'सुबर ढेकू' का कुड्ड (मेला) लगता है। जिसमें दूर-दूर से यात्रु आकर भाग लेते हैं।

गगन-चुम्बी देवदारों की सोंधी सुगंधी और रंग-बिरंगे जंगली फूलों की महक और बसन्त रुत की सर-सराती मादक हवाओं में 'ढेकू' नाच दिन ढलते ही शुरू हो जाता है और देवदारों की थिरकती परछाइयों में रात भर चलता है। उस नाच की विशेषता यह है कि साज-संगीत की लहरों के साथ, भांगड़े की सद्दों के समान ही पहाड़ी लोक-गीत के "टप्पे" चलते हैं। वैसे ही एक "बूंद" या "टप्पे" का भावार्थ यूं है—

"...मेरी जान! सुबर धार के मेले में जरूर आना, ताकि 'स्याले' की लम्बी-ठंडी रातों के बाद मैं तेरा मुंह देख सकूं...।"

जम्मू-कशमीर राजमार्ग पर "पत्तनी टॉप" मशहूर हिल स्टेशन है। उस पहाड़ी की दक्षिणी ढलवान की गोद में, आकाश से सरगोशियां करते, सदाबहार देवदारों से घिरा 'भडोरा' नाम का बहुत ही रमणीक स्थान है। कभी यह सारा इलाका चनैनी जागीर में शामिल था। चनैनी का जागीरदार (राजा) अपना जी बहलाने के लिए वहां आया करता था। उसने शरद् पूर्णिमा का 'जशन' मनाने के लिए भडोरा वन-स्थली को चुना और उसकी प्रेरणा से वहां हर साल शरद्-मेला जुटने लगा। दिन ढलते-ढलते आस-पास के गांवों से दर्शक—जो स्वयं नर्तक भी होते आना शुरू करते और पहाड़ी लोक नाच 'ढेकू' शुरू हो जाता और ढौंस

(पहाड़ी ढोल) की मद्धम थाप और बांसुरी की मदभरी तान पर रात-रात भर चलता। जागीरदार आप भी नाच और गाने में शामिल हो जाता। नाच-गाने का यह मधुर मेला आकाश रेखा पर लाली बिखरने से पहले-पहले बिखर जाता है।

अब न तो जागीर बाकी है, और न ही जागीरदार, पर लोक-संस्कृति अमर है। हर शरद पूर्णिमा को 'भडोरा' से मेले का आह्वान होता है। हर वर्ष नए जोश के साथ 'भडोरा' का मेला लगता है।

"शिवरात्रि"—"नागपंचमी", नवरात्रों के मेलों में भी काफी रौनक होती है।

शिवरात्रि—इस महा उत्सव पर जम्मू शहर और अन्य स्थानों पर भी मेले लगते हैं। जम्मू शहर में पैरेड ग्राऊंड के पास रणवीरेश्वर महादेव के मन्दिर के अहाते में शिवरात्रि का भारी मेला लगता है, जिसमें अनगिनत मर्द-औरतें और बच्चे भाग लेते है। मन्दिर के अहाते के बाहर सड़क पर भी काफी भीड़ होती है। मेला प्रातः काल से काफी रात गए तक लगा रहता है।

पंचवक्तर का मेला—जम्मू शहर के दक्षिण-पूर्वी भाग में शिवरात्रि के महोत्सव पर, श्री पंचवक्तेश्वर महादेव के विशाल शिवालय पर भी भारी मेला लगता है, जिस में शहर के इलावा पास की बस्तियों से भी लोग भारी संख्या में जमा होते हैं। यह मेला दूसरे दिन भी चलता है। श्री पंचववतर महादेव का यह शिवालय भारत के नामी शिवालयों में गिना जाता है।

पीर खोह का मेला—किला बाहु के मुकाबिल तवी नदी के दाएं किनारे की पहाड़ी में प्रागैतिहासिक काल की गुफा 'पीर खोह' के नाम से विख्यात है। इस गुफा में प्राचीन काल से एक विलक्षण शिवलिंग विराजमान है। इसी शिवलिंग के दर्शन करने के लिए इतना भारी मेला लगता है।

श्री मद्भागवत पुराण अनुसार रामायण काल के जामवंत इसी गुफा में रहते थे। इस गुफा के महन्त पीर कहलाते हैं। यहां के पहले पीर योगी गरीबनाथ थे, जो बड़े करामाती थे। वह जम्मू के राजा अजैब देव के जमाने में जम्मू आए थे। उन्हीं दिनों से यह गुफा "पीर खोह" कहलाती है।

तहसील रियासी में, चन्द्रभागा नदी के उस पार, 'पौनी' नाम के गांव से 15 कि० मी० की दूरी पर, "शिव खोड़ी" नाम की एक विचित्र गुफा है जो वैष्णो देवी की पवित्र गुफा के समान ही, कैल्शियम पत्थर से बनी है। गुफा की भीतरी छत्त पर ऐसी आकृतियां बनी हैं, जो गुफा के धुंधलके में कई रंगों के लपलपाते सर्प दिखाई देती हैं। गुफा में थोड़ी दूर आगे (आप-शंभु) शिवलिंग विराजमान है। लिंग के ठीक ऊपर छत्त में गाय के चार थन-से बने हुए हैं, जिन में से दूधिया रंग की चार धाराएं बराबर शिवलिंग पर टपकती रहती हैं।

शिवरात्रि के पर्व पर यहां भी मेला लगता है। रास्ते की कठिनाइयों की परवाह किये बिना दूर-दूर से बड़ी संख्या में यात्री इस मेले में भाग लेते हैं।

शिवरात्रि का मेला अन्य कई देव स्थानों पर भी लगता है, जिन में सुद्ध महादेव, बिलावर, बसौहली, ऐरमा, पुरमंडल मुख्य हैं।

शुद्ध महादेव का शिव मन्दिर देश भर में मशहूर है। शुद्ध महादेव चनैनी से लगभग 30 किलोमीटर पूर्व की ओर एक रमणीक पहाड़ी मुकाम है। यहां प्रसिद्ध शिवालय के अन्दर पवित्र शिवलिंग और नन्दी पर सवार शिव-पार्वती की मूर्ति विराजमान है और आंगन में लोहे के बहुत भारी त्रिशूल (जो शिवजी का वज्र बताया जाता है) के तीन टुकड़े ज़मीन में गढ़े हैं, जिन पर ब्राह्मी लिपि में कुछ खुदा हुआ है। यहां बैसाखी और शिवरात्रि को मेले लगते हैं। किन्तु यहां जून को जो वार्षिक मेला लगता है उसमें जम्मू प्रान्त के इलावा, हिमाचल, पंजाब आदि से भी बहुत से यात्री आते हैं। इस मेले को पहाड़ी और शहरी संस्कृतियों का संगम कहना चाहिए जो तीन दिन तक भरा रहता है।

नवरात्रों में जम्मू शहर में बाहू वाली महाकाली के पवित्र मन्दिर में अष्टमी और महानवमी को भारी मेले लगते हैं। श्रद्धालु जन महाकाली के आगे मन्नतें मांगते हैं और मुराद पूरी होने पर छिल्लियां चढ़ाते हैं। ऐसे ही मेले बिलावर के पास सुकराला माता और नगरी-पड़ोल (कठूआ) में भगवति बालासुंदरी के पवित्र स्थान पर लगते हैं।

जम्मू (पैरेड ग्रौंड), अन्य बस्तियों और अन्य बड़े नगरों में दशहरे के भारी मेले लगते हैं। उनके इलावा स्थानीय तौर पर कुछ और मेले भी जम्मू प्रान्त में लगते हैं।

जम्मू के त्योहार—पंचांग अनुसार विक्रमी सम्वत में लगभग हर रोज हिन्दुओं, मुसलमानों या सिक्खों आदि का कोई न कोई त्योहार आता है। विक्रमी सम्वत का श्रीगणेश बैसाखी के त्योहार से होता है। किसान लोग कई दिन पहले ही नए अनाज के स्वागत के लिए अपने घर और अनाज जमा करने के कोठार लीप-पोत रखते हैं और नए साल के स्वागत में पलाश-अमलतास के पेड़ रंग-बिरंगे फूलों से लदे और अमराइयां मादक आम्र-बौर की सुवास से महकती हुई खड़ी दिखाई देती हैं। चपल कोयल की बे-चैन कूकें बैसाखी के त्योहार की आमद-आमद की सूचना दे रही हैं। उधर बच्चे-जवान-बूढ़े पर्व अशनान के लिए खुशी-खुशी किसी सरिता सरोवर की ओर चल पड़े हैं।

आज घर-घर नाना प्रकार के व्यंजन पकेंगे। प्रीति-भोज होंगे। दोपहर को लोग मेले में जाएंगे। स्वजन एक-दूसरे से गले मिलेंगे, नए वर्ष की शुभ-कामनाओं

का लेन-देन चलेगा। यार लोग भांगड़े के ढोल के डगे पर थिरक-थिरक कर नाचेंगे। देव स्थानों पर भी काफी भीड़ होगी। शुभ-आशीर्वाद और प्रसाद बांटा जायेगा।

धर्म ध्याड़ा—यह त्योहार आषाढ़ की संक्रांति को पड़ता है, जबकि गर्मी अपने भरे यौवन में होती है। हिन्दू ठंडे जल से भरे मटके-सुराहियां, आम, खरबूज़े आदि का दान करते हैं। बाज़ारों में ठंडे शर्बत की छवीलें लगती हैं।

धर्म ध्याड़े के 8-10 दिन बाद "निर्जला एकादशी" का त्योहार आता है। ऋतु शास्त्र का अनुमान है कि उस रोज यदि आकाश बिल्कुल 'क्लीयर' रहे, वर्षा की एक बूंद भी न गिरे तो आगामी बरसात फलदायक रहेगी। धार्मिक वृत्ति के लोग उस रोज निराहार व्रत रखते हैं। दिनभर पानी नहीं पीते। 'धर्म-ध्याड़े' की तरह ही उस रोज भी जल-भरे मटके और फलादि दान किए जाते और ठंडे-भीठे जल की छवीलें लगती हैं।

नाग पंचमी—सावन की शुक्ला पंचमी को नागों का त्योहार मनाया जाता है। साधारण मान्यता है कि इस रोज भगवान शिव सर्प-बिच्छू आदि की सृष्टि को फिर अपनी झोली में डाल लेते हैं, जिन्हें शिवरात्रि के महा उत्सव पर उन्होंने छोड़ दिया था। और यह मानी हुई बात है कि नाग पंचमी के बाद सर्प-बिच्छू आदि विषैले जीव "अंडर ग्रौंड" हो जाते हैं।

नाग पंचमी से पहले गृहिणियां घर के हर कमरे, हर अंधेरे कोने की भली प्रकार सफाई करती हैं। उस रोज रसोई घर में पूरी स्वच्छता रहती है। रसोई घर की किसी दीवार पर चावलों के घोल से सांप-बिच्छू-क्रौंकल आदि की आकृतियां बनाकर उन्हें खीर, "म्हेरी" (खट्टी लस्सी की खीर) और दलिया आदि का नैवेद्य लगाया जाता है। सांप की बाम्बी पर दूध की लस्सी डाली जाती है।

घर का प्रधान व्यक्ति प्रार्थना करता है, "हे नाग देवता! तेरी साम! हमारे परिवार और पशु-धन की रक्षा करना⋯"

नाग पंचमी के त्योहार पर नागराज-वासुकी के "थानों" से गोगियाल (नागराज की शोभा यात्रा) भी निकलती है।

राखी—श्रावण मास की पूर्णिमा को बहिन-भाई के पवित्र स्नेह का प्रतीक 'राखी' का त्योहार आता है। उस रोज बहिनें अपने भाइयों की कलाई पर राखी के पवित्र धागे बांधती हैं, और पितृ-कुल के कल्याण की कामना करती हैं। इस त्योहार की कई ममता भरी कहानियां इतिहास में सुरक्षित हैं।

कृष्ण जन्म अष्टमी—इस पवित्र त्योहार का सम्बन्ध श्रीकृष्ण जी के जन्म से है। पापी राजा कंस के बंदी-गृह में वासुदेव-देवकी के यहां भादों मास

अंधेरे पक्ष की अष्टमी को रात के 12 बजे कृष्ण जन्म हुआ था। सनातनी हिन्दू उस मुबारिक रोज़ दिनभर निराहार रहकर कृष्ण जन्म होने पर फलाहार करते हैं। कृष्ण भगवान के मन्दिरों और कई घरों में भी झूले डाले जाते हैं। जन्म की खुशी में कृष्ण मन्दिरों में पूजा होती है।

इस त्योहार पर पतंगबाजी भी खूब जोरों पर होती है।

भगवान कृष्ण ने अपने युग के सामाजिक जीवन में महान क्रान्तियां लाईं। दूर्वा अष्टमी (द्रुबड़ी), वत्स द्वादश (बच्छ दोआह), गोवर्धन पूजा और गोपाल अष्टमी आदि त्योहार उसी समाजी क्रान्ति की याद में आज तक चले आ रहे हैं।

द्रुबड़ी (दूर्वा अष्टमी)—यह हिंदू महिलाओं का धार्मिक त्योहार है। उस रोज उनका व्रत होता है। आटे को पीला रंग देकर उससे "कट्टू और बच्छू बनाए जाते हैं, और पीले सूत के डोरे को सोलह गांठें दी जाती हैं। घर में जितने मर्द और लड़के-बाले हों उसमें से हरेक के नाम का एक-एक मीठा "रुट्ट" पकाया जाता है। हरी दूर्वा (देश की हरित क्रान्ती की प्रतीक) और कुछ फल आदि लेकर महिलायें नव-ब्याहता वधु और नवजात शिशु को साथ लेकर किसी तालाब या पन्यास पर जाकर शिशु को "बन्नह" चढ़ाते हुए, हरी दूर्वा से उस पर जल के छींटे डालती और मिलकर गाती हैं :—

"....कट्टू आए बच्छू आए, बच्छ दोआही तेरड़ो,
सोलां द्रुब्बां, 16 गण्डेह् धागा बधा, खसम पुत्तर नवाब लब्बा।
रानी पूजै राजै गी, औं पूजां सोहागै गी।
रानी ने राजा, ते में सोहाग प्यारड़ा...कट्टू आए, बच्छू आए...

बच्छ दोआह—द्रुबड़ी के पांच दिन बाद 'बच्छ दोआह' का त्योहार आता है। इसका पूजन द्रुबड़ी जैसा ही होता है। अन्तर केवल इतना है कि जो घराने द्रुबड़ी का पूजन करते हैं वह 'बच्छ दोआह' नहीं पूजते।

गोपाल अष्टमी—यह भी द्रुबड़ी और बच्छ दोआह के साथ का ही तीसरा त्योहार है। यह कातिक की अष्टमी को आता है। यह गौधन के पालन और उसकी रक्षा के महत्व को कायम रखने के लिए हर वर्ष मनाया जाता है। उस रोज सनातनी लोग प्रात: अशनान करके गौ माता का पूजन करते हैं। उनके माथे पर सिन्धूर का टीका लगाया और उनके गले में फूल-मालाएं पहनाई जाती हैं, उन्हें आटे के पेड़े खिलाए जाते हैं।

नवरात्रे—यह नौ दिन का त्योहार होता है जो वर्ष में दो बार मनाया जाता है—(1) चैत्रमास की प्रतिपदा से नवमी (राम नवमी) तक। (2) असूज

महीने शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से महानवमी तक) दोनों नवरात्रों में कई घरों में श्रीदुर्गा सप्तशती का पाठ होता है—"साख" बीजी जाती है। नवमी को हवन और कन्यापूजन होता है।

असूज के नवरात्रों में नगरों में रात को रामलीला खेली जाती है और दशहरे के दिन रावण, कुम्भकरण, मेघनाद और लंका का "दहन" होता है।

चैत्र के नवरात्रों की नवमी (राम नवमी) को श्री रामचन्द्र जी का जन्म दिन भी मनाया जाता है।

करवा चौथ—कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को सधवा महिलाओं का बड़ा भारी त्योहार आता है। इस पवित्र दिन को वह अपने अटल सुहाग के लिए सारा दिन निर्जल-निराहार व्रत रखती हैं। उत्तर प्रदेश की महिलाएं शिव-पार्वती और गणेश की मिट्टी की मूर्तियां बना कर, उनकी पूजा करती हैं। जम्मू में सुहागिनें और कुँवारी युवतियां प्रातः चार बजे "सरगी" खाती हैं। फिर रात को चन्द्रमा दर्शन करके ही अन्न-जल ग्रहण करती हैं। संध्या समय कई सुहागिनें एक घेरे में खड़ी होकर "बेआ" का थाल हाथों-हाथ चलाती हैं। उस थाल में फल, मिठाई, जलता मिट्टी का दीपक आदि होता है। "बेआ" का थाल हाथों-हाथ चलाते हुए महिलाएं "बीरो कुड़ी" का गीत भी गाती हैं। फिर वही "बेआ" का थाल अपनी सास या ससुर या पति के आगे रखकर उसकी आरती उतार कर उनका चरणोदक लेती हैं और उनसे "अटल सुहाग" का आशीर्वाद पाती हैं।

दीपावली—"तमसो मा ज्योतिर्गमय", इस आदर्श वाक्य पर आधारित महालक्ष्मी का यह त्योहार कार्तिक अमावस्या को बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। देखा जाये तो दीपावली से भेइया दूज (टिक्का) तक त्योहारों का एक सिलसिला ही चलता है। देहात में कृषक वर्ग "श्रावणी" की फसल के स्वागत में अपने घरों की लीपा-पोती करते हैं।

आम जनता भी दीपावली पर अपने घरों में सफाई-सफेदी करवाते हैं। रात को घर-नगर दीपों से जगमगा उठते हैं। व्यापारियों का "ब्योपारी साल" दीपावली से ही शुरू होता है। आम घरों में उस दिन लक्ष्मी-पूजन होता है। मित्रों, सम्बन्धियों और "अफसरों" के यहां "दीपावली की मिठाई" तकसीम होती है। रात को आतिशबाज़ी छूटती है।

सच्च पूछो तो यह "अमीर दीवाली" की बहारें है। "गरीब दीवाली" के बारे में स्व० जगन्नाथ चार्ली ने लिखा था :

"मेरे भाह् दी फाट्टी ऐ—पही देआली आई ऐ…"

होई—यह त्योहार कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को आता है। धीवर स्त्री एक तखती या मोटे कागज पर एक मानव खाका और उसके साथ लोक-चित्रकारी में बैंगन, मूली, गन्ना आदि की आकृतियां भिन्न-भिन्न रंगों में बनाकर ले आती हैं। घर की स्त्रियों का उस रोज व्रत होता है। वह मीठे आटे के अंग्रेज (8) की शकल के 'सुट्टू-भुट्टू' तलकर रखती हैं। रोटी-चावल-दाल आदि के मण्डले के साथ गन्ना, मूली, बैंगन और सुट्टू-भुट्टू धीवर महिला को देती है और आप फल आहार ग्रहण करती हैं।

धीवर स्त्री का इस पर्व के साथ सम्बन्ध के बारे में पद्म-पुराण में एक कथा आई है।

लोहड़ी—मकर संक्रान्ति से पहले रोज लोहड़ी का महान् त्योहार आता है। यह शरद् ऋतु का अन्तिम दिन समझा जाता है, और जम्मू के इलावा पंजाब और हरियाणा में भी बड़े जोश के साथ मनाया जाता है। उस रोज तिल, रयोड़ी, तलूने, अखरोट आदि खाते हैं। प्रात: नदी आदि पर अशनान करने लोग देवस्थानों पर जाते हैं।

पहले दिनों में बच्चे और युवा लोग बड़ी कारीगरी से छज्जे बनाया करते थे। छज्जा बांस की खपचियों के ढांचे पर डांट, अबरी, रोगनी कागज से नाचते हुए मोर की आकृति बनाई जाती थी, जो दूर से हू-बहू नाचता हुआ मोर ही दिखाई देता था। इस तरह के छज्जे उठाए नौजवानों की टोलियां हर उस घर में जाती थीं, जहां कुछ दिन पहले विवाह या पुत्र जन्म हुआ हो। नर्तकों की टोली ढोल के ताल पर नाचती और छज्जे को नचाती-डंडा रस खेलती और बधाई लेकर विदा होती। लड़कियों की टोलियां "लोहड़ी मांगने" आतीं।

रात को घरों के आंगन और चौक-बाजारों में लोहड़ी जलाई जाती है। इस त्योहार पर रयोड़ी-चिड़वे बांटे जाते हैं। शरद् ऋतु को विदा किया जाता है। लोहड़ी से अगले रोज़ उत्तरायण का पर्व-त्योहार आता है, जो मकर-संक्रान्ति या उत्तरायण कहलाता है। उस रोज़ पृथ्वी अपनी दक्षिणायन की छः मास की शरद यात्रा पूरी करके उत्तर की ओर अपनी बागें मोड़ती है। उत्तरायण पर्व के महातम का महाभारत और कई पुराणों में भी हवाला मिलता है। उस रोज सम्बन्धियों को खिचड़ी खिलाई जाती है।

शिवरात्रि—इस पर्व-त्योहार के बारे में पीछे भी काफी लिखा जा चुका है। यह फाल्गुन कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को सारे उत्तरी भारत में बड़ी निष्ठा से मनाया जाता है। लोग सारी रात जागकर शिव की आराधना करते हैं।

बसन्त पंचमी—बसन्त को ऋतुराज कहा गया है। शीत पाले से ठिठुरी-सुकड़ी प्रकृति अपनी आलस्यभरी गुदड़ी उतार फेंकती है। पेड़-पौधों और

प्राणीमात्र में नयी उमंग, नया जोश सरसराने लगता है। वसन्ती वायु में हल्की-सी मादकता महसूस होती है। पूर्वी भारत में इस रोज़ किसान अपने हलों की पूजा करते हैं। जम्मू प्रदेश के किसानों का इस हवा के बारे में एक लोक गीत है :—

"···वली पुरै दी ब्हा (हवा), करीरां पौंगरियां।
गल फुल्लें दे हार ते मूण्ढै बौंगड़ियां॥"

राजा राज के दौर में बसन्त पंचमी पर शाही दरबार लगता था। दरबारी लोग बसन्ती पगड़ियां पहने दरबार में जाकर नज़राने पेश करते थे। जनता भी उल्लास से बसन्त मनाती थी। लोग बसन्ती पुलाओ और हलवा खाते खिलाते थे। मर्द बसन्ती पगड़ियां और औरतें बसन्ती दुपट्टे ओढ़ती थीं। शाम को ठाकुर जी की "वासन्ती झांकी" निकलती थी। जिसमें हजारों बसन्ती पगड़ियां और पग्गू यूं दिखाई देते थे कि सचमुच ऋतुराज की बारात निकली है। ···और आज की बसन्त के आप स्वयं साक्षी हैं।

होली—फाल्गुण पूर्णिमा को होली का रंगीला त्योहार आता है। वैसे होली का पर्व 12-13 दिन पहले से ही आ जाता है। बसन्त रुत में हंसी मज़ाक के लिए मनुष्य का जी हर देश में मचलता है। उसकी अभिव्यक्ति जुदा-जुदा है। इंग्लैंड के नामी निबन्धकार का All Fools a Day (आल फूल्ज़ ए डे) निबन्ध इसकी सुन्दर मिसाल है। हमारे देश की "बरसाने की होली" मशहूर है।

होली खेलते हुए हम ऊंच-नीच का भेदभाव अक्सर भूल जाते हैं। आज से 60-70 साल पहले की होली कुछ और थी। महाराजा और उसके दरबारी हाथियों पर सवार होकर क्योड़े और गुलाब में घुले रंगों के साथ प्रजा-जनों के साथ होली खेलते थे। दोनों ओर से सुगंधित गुलाल के फव्वारे छूटते थे। घरों में मित्रों और सम्बन्धियों और विशेष रूप से देवर भाभी की होली मचती थी। आज भी कहीं-कहीं "सभ्य होली" दिखाई देती है—जान-पहिचान के दो व्यक्ति हाथ जोड़कर मिलते हैं। एक दूसरे के माथे पर गुलाल का टीका लगाते—गले मिलते और एक दूसरे का मुंह मीठा करते हैं और साधुवाद का उच्चारण होता है, 'अगले ब'रै-बी सुखें-सांदें होली आवै।"

और तस्वीर का दूसरा रुख है—"गन्दा पानी भरे फानूसों और जूते-खोसड़े की होली॥"

मुसलमानों सिक्खों-इसाइयों आदि के त्योहार

मुसलमानों के चार मुख्य त्योहार हैं :—

1. **शब-ए-बारात**—हिजरी साल के 'शबान महीने की 14/15 तारीख की दर्म्यानी रात, अहल-ए-इस्लाम की शादमानी की रात होती है। हज़रत

मुहम्मद जी के तीन अनन्य भक्त थे—हजरत बैलाल, हजरत सहीद और ईरानवासी हजरत अवैश । हजरत अवैश को पता चला कि एक लड़ाई में हजरत मुहम्मद के चार दान्त टूट गए हैं । यह सुनते ही हजरत अवैश ने अपने सारे दान्त तोड़ डाले थे । यह शब-ए-बारात उसी घटना की याद में मनाई जाती है । उस रात को मुसलमान सामूहिक रूप में "नमाज-ए-फातिहा अदा करते हैं ।

ईद-उल-फित्र - यह मुसलमानों का बड़ा भारी धार्मिक त्योहार है । इसका बड़ा महातम यह है कि यह मुबारिक त्योहार रमजान मास के बाद आता है । पूरा महीना भर रोज़े खोलने से पहिले सामूहिक नमाज़ अदा करने से भ्रातृ-भाव और सामाजिक बन्धन मज़बूत होता है । ईद के रोज भी सामूहिक नमाज़ (इकट्ठे) पढ़ी जाती है । सब एक-दूसरे के गले मिलते हैं । गरीबों में न्याज़ बांटी जाती है ।

ईद-उल-ज़ुहा—यह भी ऐहल-ए-इस्लाम का बड़ा त्योहार है । इसे "बकरीद" भी कहते हैं । हजरत मुहम्मद ने ईद-उल-ज़ुहा को ही इस्लामी संगठन का आधार माना था । इसकी कथा यूं है कि इस्लाम के धर्म-गुरु हजरत अब्राहम को स्वप्न में आह्वान हुआ कि अपनी प्रियतम वस्तु खुदा के नाम पर कुर्बान कर दो । उनका इकलौता बेटा ही उनके विचार में वह प्रियतम वस्तु थी । आँखों पर पट्टी बांधकर बच्चे के गले पर "तकबीर" डाली तो आँखों पर से पट्टी हटाकर क्या देखते हैं कि बच्चा सामने खड़ा मुस्करा रहा था और एक दुम्बे की कुर्बानी हो चुकी थी ।

उस महान घटना की याद में यह त्योहार चला आ रहा है ।

ईद-ए-मेलाद—हजरत मुहम्मद का जन्म सन् 561 ई० में कुरैश परिवार में शहर मक्का (अरब) में हुआ था । उस पवित्र दिन की याद में यह मुबारिक त्योहार संसार भर के मुसलमान मनाते हैं । सामूहिक नमाज़ पढ़ी जाती है । ज़कात बांटी जाती है । दीपक-माला होती है ।

सिक्खों के पवित्र त्योहार

सिक्खों के सारे त्योहार दसों गुरु महाराज के शुभ जन्म दिन या शहीदी पर्वों से सम्बन्ध रखते हैं । उन पर्वों पर शरबत की छबीलें और गुरुद्वारों में लंगर लगते हैं । विशेष गुरुद्वारों पर दीवान भी लगते हैं ।

गुरु नानक देव का पर्व कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है । उस दिन किसान शहीद बाबा जित्तो का भी जन्म-दिन मनाया जाता है । पर्व से पहले दिन भारी जलूस निकलता है, जिसमें हर वर्ग और धर्म के लोग बड़ी श्रद्धा से शामिल होते हैं ।

क्रिसमिस—ईसाई जगत के महान, हजरत यशु मसीह का जन्म ईस्वी

सन् से चार साल पहले 25 दिसम्बर को हुआ था। यह सम्मान सीरिया देश को प्राप्त है। 25 दिसम्बर से 31 दिसम्बर तक ईसाई त्योहारों का सप्ताह मनाया जाता है—जिसे क्रिसमिस कहते हैं। संसार में ईसाइयों की गिनती बाकी सब धर्मों से अधिक है, इस कारण क्रिसमिस का त्योहार संसार का सबसे बड़ा त्योहार माना जाता है।

गुरु रविदास जन्म-दिवस—आपका जन्म जनवरी मास में एक हरिजन (चर्मकार) घराने में हुआ था। आप भी जूते बनाया करते थे। उन पर कबीर पंथ की रंगत चढ़ी थी। ऊंचे चरित्र और उच्च विचारों के कारण आपकी गणना महापुरुषों में होती है। आपका जन्म दिवस बड़े उल्लास से मनाया जाता है। अन्य लोग भी उस समारोह में शामिल होते हैं।

महावीर जयन्ती—महामुनि महावीर जी महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। आपके अनुयायी जैनी कहलाते हैं और अधिकतर ऊंचा व्यापार करते हैं। जनगणना अनुसार जम्मू में जैनियों की संख्या लगभग बारह सौ है। महामुनि जी की जयन्ती जैनी लोग मार्च महीने में बड़ी लगन से मनाते हैं।

सितम्बर मास में जैनियों का व्रत पर्व भी आता है, जबकि यह लोग सामूहिक व्रत रखते हैं।

गणतन्त्र दिवस—26 जनवरी 1950 को, नए विधान अनुसार भारत में गणतन्त्र की घोषणा की गई थी। तब से हर साल 26 जनवरी को राष्ट्रीय त्योहार के तौर पर सारे देश में और बाहर के देशों में भी बड़ी शान के साथ मनाया जाता है। इसका मुख्य कार्यक्रम तो राजधानी दिल्ली में होता है। प्रदेशों की राजधानियों और कई नगरों में भी इसे मनाया जाता है।

राष्ट्रीय प्रोग्राम प्रातःकाल शहनाई वादन से आरम्भ होता है। फिर किसी खुले मैदान में सरकारी तौर पर राष्ट्रगान के साथ तिरंगे ध्वज की सलामी और मार्च पास्ट के बाद सांस्कृतिक झांकियों की शोभा यात्रा और लोक-नाचों का प्रदर्शन होता है।

यह राष्ट्रीय कार्यक्रम 26 जनवरी से शुरू होकर 30 जनवरी के रिट्रीट मार्च के साथ समाप्त होता है।

चैत्र चौदश—यह विक्रमी सम्वत् का अन्तिम त्योहार है जो चैत्रमास की चौदश को मनाया जाता है। जम्मू के सनातनी लोग तवी या नहर पर अशनान करते हैं। महिलाएं 'उत्तरबैहनी', 'पुरमण्डल', 'मानसर' जाकर अशनान करती हैं। जहां काफी बड़े मेले भी लगते हैं। उधमपुर और शुद्ध महादेव में देविका अशनान का भी महातम माना जाता है। वहां पर्व-मेला भी लगता है। अन्नदान भी किया जाता है। □

डोगरी लोकगाथाएं—समीक्षात्मक अध्ययन

□ शिव निर्मोही'

डुग्गर की लोक गाथाएँ डुग्गर की लोक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती हैं। इन लोक गाथाओं में डुग्गर का लोक इतिहास, लोक समाज, लोक जीवन, धर्म और लोक आस्थाएँ एवं विश्वास प्रतिध्वनित होते हैं। इन्हीं लोक गाथाओं के अध्ययन से सुस्पष्ट होता है कि डुग्गर की आदि संस्कृति अनार्य थी और किरात, यक्ष तथा नाग जातियों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध इस प्रदेश से अवश्य था।

डुग्गर का आदि इतिहास जब लिखा जाएगा डुग्गर की लोकगाथाओं का महत्व तब और भी अधिक बढ़ जाएगा। डुग्गर का आदि इतिहास केवल लोक गाथाओं में ही मुखरित है अतः डुग्गर की लोक गाथाएँ एक इतिहासकार की दृष्टि में भी ऐतिहासिक दस्तावेज से कम नहीं हैं। डुग्गर में उपलब्ध बाबा भैड़ की ही लोक गाथा को यदि हम उदाहरण स्वरूप लें तो इतना स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रदेश का इतिहास वैदिक साहित्य में भी ध्वनित हुआ है। भैड़ डुग्गर में अब एक लोक देवता के समान पूज्यनीय है। किन्तु ऋग्वेद (7·19·1—6) में भेड़ के नाम का उल्लेख इस बात का साक्षी है कि इस लोक देवता का सम्बन्ध वैदिक युग से है। श्री जगदीशचन्द्र साठे के अनुसार ऋग्वेद में भेड़ नाम के एक बड़े बलशाली और पराक्रमी योद्धा का वर्णन है। वह सुदास जैसे पराक्रमी राजा का प्रमुख विरोधी था तथा त्रित्सु भारत का भी। यदि भेड़ कोई राजा ही था तो अनुमान लगाया जा सकता है कि उस का सम्बन्ध इसी प्रदेश विशेष से रहा होगा। उस की सहायक अज, शिग्रु और यक्शु जाति के लोगों का भी सम्पर्क इस भूमि से रहा है। यशकुन जाति के लोगों को ही यक्शु जाति का अवशेष माना जाता है। इस जाति के लोग अब केवल करगिल में ही हैं। अज और शिग्रु जाति के लोग पर्वतीय जनजातियों में विलीन हो गए लगते हैं। इन सभी को सुदास ने यमुना नदी के निकट हुई लड़ाई में परास्त किया था। यह

लड़ाई दश राजन के प्रथम युद्ध जो रावी नदी के निकट डोगरा पर्वतीय क्षेत्र में हुआ था, के बाद हुई थी। सुदास के साथ युद्ध में भैड़ की पराजय का कारण प्राकृतिक प्रकोप था । भैड़ की सेना नदी में बाढ़ आ जाने के कारण बह गई, जिससे सुदास विजयी हुआ। किन्तु बाद में भैड़ ने बदला लेने के लिए सुदास पर प्रत्याक्रमण किया और वह यमुना नदी तक जा पहुँचा था।

जिस प्रकार गंगा नदी के प्रवाह को बदलने का प्रयास राजा भागीरथ ने किया था और वह अपने प्रयास में सफल भी रहा था, उसी प्रकार वैदिक युग में राजा भैड़ ने भी तवी नदी का प्रवाह बदला था। डोगरी लोकगाथा बावा भैड़ के अनुसार एक बार राजा वासुकि नाग ने वासकुंड का पानी पीने की इच्छा व्यक्त की, जिसे भैड़ ने पूरा किया। लोकगाथा के अनुसार :—

हुक्म कीता राजै बासकै देओ मिगी जल पलयाई ।
बाई पुतर राजे वासके दे, टुरी पे तेगां ठाई ।
मारी मंजला राजा भैड़, जेड़ा बास कुण्डै गी जाई ।
तप करियै राजे भैड़ै नै, गदा प्हाड़ै गी लाई ।
अग्गैं-अग्गैं भैड़ ते, पिच्छै तौ चलदी लड़ङ्गन चक बड़ाई ।
अग्गैं-अग्गैं भैड़ देवता चलदा पिच्छैं तौ नगानी ।
उप्पर जम्मुआं दै 'तौं' बगै, पल्याई पिता जी देना पानी ।

इस लोक गाथा के अध्ययन से यह ध्वनित होता है कि नदियों के बहाव को बदलने का प्रयास कई स्थानों पर किया गया था।

वैदिक युग से सम्बन्धित इस गाथा के अतिरिक्त उपनिषद् युगीन एक कथांश पर आधारित बावा बिरपानाथ की लोक गाथा उपलब्ध है। ऋग्वेद में वरुण की एक प्रार्थना है जो शुनः शेप ने की है। ऋग्वेद में इसका कोई वृत नहीं मिलता। उपनिषदों में पहुँचते-पहुँचते इस का एक अच्छा कथानक बन गया है। हरिश्चन्द्र ने वरुण की आराधना से रोहित इस शर्त पर प्राप्त किया था कि वह अपना पुत्र उसे प्रदान कर देगा। रोहित उत्पन्न होने के बाद वरुण बार-बार हरिश्चन्द्र के पास रोहित प्राप्त करने के लिए आया। हरिश्चन्द्र ने रोहित की वार्ता वरुण को तो नहीं दी किन्तु बलि के लिए किसी ब्राह्मण कुमार को क्रय करने के लिए भेज दिया। रोहित ने वन में अजीगर्त नामक ब्राह्मण को कुछ गौएं देकर उसके बेटे शुनःशेप को बलि के लिए क्रय कर लिया। किन्तु बलि के दिन विश्वामित्र ने शुनःशेप को बलि से बचा लिया। उसे अपना पुत्र बनाया। उपनिषद् युगीन यही कहानी पुराणों में सत्य हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध गाथा बन गई। नाम प्रायः सभी उपनिषद्-युगीन रहे किन्तु कथानक बदल गया। हरिश्चन्द्र सत्यवादी बन गए। विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के विरोधी हो गए। शुनःशेप का

चरित्र लोप हो गया। रोहिताश्व सहानुभूति का पात्र बन गया। वरुण को केवल जल का देवता या जल का राक्षस माना जाने लगा।

किन्तु डुग्गर क्षेत्र में इस कथानक का उपनिषद् युगीन रूप अपरिवर्तित रहा। योगियों ने गुरू गोरखनाथ का महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए कथानक के पात्रों के नाम अवश्य बदले। डोगरी लोक गाथा में विश्वामित्र का स्थान गोरखनाथ को मिला। अजीगर्त का नाम बदल कर लद्दा और शुन:शेप का नाम बिरपा कर दिया गया। यथा :—

हुक्म कीता राजे ने पही ले छत्तु सदाई।
लेई माया दे बदरे छात्तु चौंने कूटें जाई।
पिण्डो-पिण्ड देन ढण्डोरा कोई बेच दी माई।
बीर पुरै बिच लद्दा ब्राह्मण, पुत्तर बेचदा जाई।
कन्नै माया दै तोलेआ बीरो, मंहगै मुल्ल बकाई।
लेई बीरो गी चले छात्तु, जिआं लेला बागां लाई।

डुग्गर में राम कथा, कृष्ण कथा, महाभारत कथा अथवा किसी अन्य पौराणिक कथा से सम्बन्धित कोई लोक गाथा उपलब्ध नहीं है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि पौराणिक धर्म अथवा पौराणिक आख्यान डुग्गर में बहुत बाद में प्रचलित हुए। कुल्लू क्षेत्र में कुन्ती नन्ती नामक एक लोक-गाथा अवश्य प्रचलित है किन्तु इसमें भी कौरवों को शालीन और पांडवों को उद्दण्ड बताया गया है।

अनार्य जातियों से सम्बन्धित कई लोक गाथाएँ डुग्गर क्षेत्र में अब भी प्रचलित है। नाग डुग्गर में आदि काल से ही सम्मानित रहे हैं। डा० अनन्त राम शास्त्री का भी अभिमत यही है कि हो सकता है कि डुग्गर में नाग जाति के लोगों का शासन रहा हो। डुग्गर की लोक संस्कृति को विद्वान आज भी नाग संस्कृति से प्रभावित मानते हैं। विश्वास है कि किसी समय इस क्षेत्र में नाग देवताओं पर आधारित दर्जनों लोक गाथाएँ प्रचलित रही हों, किन्तु आज उपलब्ध नाग गाथाओं की संख्या बहुत अधिक नहीं है। वासक नाग, सोंफू नाग, काली नाग, ककोड़ी नाग, दोद्धिया नाग आदि की गाथाएँ गद्य रूप में उपलब्ध हैं। नाग देवताओं की लोक गाथाओं के साथ-साथ यक्ष देवताओं का भी उल्लेख हुआ है जिससे यह आभास मिलता है कि नाग और यक्ष जातियों का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। डुग्गर के नाग राजाओं के यक्ष मंत्री रहे हैं। नाग देवताओं की लोक गाथाओं के गायक निम्न जातियों से सम्बन्धित हैं। कई विद्वानों का मत यह भी है कि इन निम्न जातियों का सम्बन्ध नागों से अवश्य रहा होगा या यह भी सम्भव है कि ये जातियाँ नाग जाति का ही एक अंग रही हों।

डोगरी लोक गाथाओं का अनुशीलन करने से पता चलता है कि यहाँ के निवासियों को वैदिक धर्म से अधिक बौद्ध धर्म ने अधिक प्रभावित किया है। बौद्ध धर्म की सहजयान, वज्रयान और मन्त्रयान शाखाओं से विकसित सिद्धों और उनके बाद अभ्युदित नाथों का प्रभाव इन गाथाओं में देखा जा सकता है। डोगरी गाथाओं में चुरासी सिद्धों और नौ नाथों का उल्लेख बार-बार हुआ है। नौ नाथों में केवल गोरखनाथ ही डुग्गर समाज को ग्रहणीय रहे। दन्त कथाओं में गोरखनाथ द्वारा डुग्गर के परिभ्रमण के वृत मिलते हैं। गोरख नाथ की यात्राओं का परिणाम यह निकला कि उनका मत डुग्गर का मुख्य धर्म बन गया। नाथ पंथी योगियों ने राजा भरथरी, राजा गोपी चन्द, राजा रसालू, पूर्ण-भक्त, पीर चरंगी नाथ, राजा होड़ी की लोक गाथाएँ घर-घर जाकर सुनाईं। नाथ पंथ प्रवृति की अपेक्षा निवृतिमूलक था, अतः डुग्गर के लोगों में भी कुछ पाने की अपेक्षा लुटाने का भाव अधिक बल पकड़ गया। इस क्षेत्र के भी कई नरेश राज्य त्याग कर योगी बन गए जिनमें भैरों नाथ का नाम उल्लेखनीय है।

नाथ योगियों द्वारा ही गुग्गा चौहान की लोक-गाथा प्रचारित की गई। इस लोक गाथा में नाथों और नागों के संघर्ष को उभारा गया था। लगता है कि नाथ नाग विरोधी थे। डुग्गर में जैसे-जैसे नाथ पंथ जोर पकड़ता गया नागलोक और उनकी संस्कृति वैसे-वैसे ही क्षीण होती गई। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि नाथ पंथियों ने स्थानीय नागों को अपने में आत्मसात कर लिया। किन्तु फिर भी भद्रवाह अंचल नाथ पंथियों से पूर्ण प्रभावित नहीं हुआ। और वहाँ नाग संस्कृति किसी न किसी रूप में अक्षुण बनी रही। राजतरंगिणी में उल्लेखित खंखपाल नाग का महत्त्व भी बहुत घट गया और वे पंचारी लांदर क्षेत्र के केवल मात्रा लोकदेवता मात्र ही बनकर रह गए।

नागों के महत्त्व के घटने से नाग देवताओं की लोक गाथाओं का महत्त्व भी घटने लगा। परिणामस्वरूप नाग देवताओं सम्बन्धी लोकगाथाएं विलुप्त हो गईं।

नाग और नाथ दोनों शिव उपासक थे। दोनों ने शिव को अपना आराध्यदेव मान लिया था। अतः डुग्गर में शिव सम्बन्धी कई लोकगाथाएं प्रचलित हुईं। डुग्गर की लोकगाथाओं के शिव पौराणिक ग्रंथों में उल्लेखित शिव से पूर्णतः भिन्न हैं। यह शिव अनार्यों के अधिक निकट हैं। शिव को पूरे डुग्गर क्षेत्र में महादेव के नाम से अभिहित किया जाता है। वे डुग्गर की आदि जातियों यथा खस, गद्दी, कोली आदि के भी आदिदेव हैं।

शिव डुग्गर के दामाद भी हैं। उन्होंने चनैनी के हैंचल राजा की पुत्री गौरजां से विवाह करके सम्पूर्ण डुग्गर क्षेत्र को पावन कर दिया। शिव के विवाह

से सम्बन्धित कई लोकगाथाएँ डुग्गर क्षेत्र में प्रचलित हैं। किन्तु भद्रवाह अंचल में प्रचलित लोकगाथा अति रसात्मक है। इस गाथा के रचयिता नाथ योगी हैं क्योंकि इस में नव लाख योगियों का उल्लेख बार-बार हुआ है, यथा :—

शिव मेरे शामी अन्तर शामी,
तीन लोक दे मालिक शामी,
चन्द-सूरज को न्यूंदरे पाए,
देन्द सुदिन्त सदि बी लाए,
नव लक्ख योगी नव लक्ख भोगी,
नव लक्ख दुधारी मेरे शामी।

किन्तु ऊधमपुर आँचल में प्रचलित शिव विवाह सम्बन्धी लोक गाथा में नाग संस्कृति का प्रभाव अधिक लगता है। लोकगाथा के अनुसार :—

चैतर शिव जी बैल चढ़े, नरसिंह डमरू साजै,
सज्जै हत्थ तरसूल शिवें दै, खब्बै गोरजां विराजै,
हत्थ शिवें दै रुण्ड माला, शेष नाग गल पाई,
शेष नाग गल पाये शिवें दे, जटों में गंगा माई।

डुग्गर में जहां-जहां भी उत्कीर्ण शिवलिंग पर नाग दिखाए गए हैं, उन क्षेत्रों में नाग संस्कृति के अवशेष अब भी मिलते हैं। शिव को जादू, टोने टोटके से सम्बन्धित सिद्ध करने के लिए इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों ने ऐसी लोकगाथाएँ भी सृजित की हैं, जिन में शिव और पार्वती के उज्ज्वल चरित्र को धूमरित किया गया है। 'शिव खेलन झड़ियाँ' नामक लोकगाथा में काला जादू जैसे कुत्सित कार्यों में भी शिव का नाम घसीटा गया है। इस गाथा में परा प्राकृतिक चित्रण अन्तिम सीमा तक चित्रित है यथा :—

कैरु देस, कमाख्या देवी, जिन्न धर्में दी मैन बनाई।
सोने दी चिड़ी बनी गौरजां पार समुन्दरैं आई।
सुता पेआ सम्हेला जोगी, जिन्नै तलियां झस्स जगाई।

इस गाथा में जादू में प्रयुक्त वस्तुओं का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है।

उल्लू सलियां सीह दियां तलियां, नीले दी मरगाई।
चौं चूकें दी मिट्टी लैंदा, घुम्बरुए दा पानी।

भूत-प्रेत विद्या जानने वाले लोगों ने भी अपनी लोक-गाथाओं में शिव को ही अपना आराध्यदेव उल्लेखित करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस विद्या के आदि प्रणेता भी शिव ही हैं। इस प्रकार डुग्गर के लोक समाज में शिव

पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हैं। डुग्गर की लोक गाथाएँ शैव मत के किसी दार्शनिक सिद्धान्त से प्रभावित नहीं लगतीं। ये गाथाएँ विशुद्ध लोक मानस की ही उपज लगती हैं और निःसन्देह लोक मानस की ही अभिव्यक्ति कही जा सकती हैं।

शिव की आद्य शक्ति पार्वती हैं। किन्तु डुग्गर में पार्वती केवल गौरजां रूप में ही मानी गई हैं। डोगरी लोक साहित्य में शक्ति सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है किन्तु लोकगाथा विधा के अन्तर्गत शक्ति सम्बन्धी जो गाथाएं उपलब्ध हैं उनके अध्ययन से केवल इतना ही कहा जा सकता है कि लोक गाथाकारों ने इन देवियों का उल्लेख केवल लोक देवियों के रूप में ही किया है। डोगरी में वैष्णों माता की लोकगाथा निःसन्देह अन्य देवी गाथाओं से भिन्न है। यह लोकगाथा कम और प्रशस्ति गीत अधिक लगती है। इस गाथा की कुछेक पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

नंगे पैरें औन्दा बन्नियां सुन्नै दा छतर चढ़ाई।
अस्सू म्हीनै भरकत्यालै, चाल वैष्णो दी आई।
लहौरी संग पशौरी संग औंदा संग थारा-थारा।
पालकियें पेई औंदें छतरी ते ब्राह्मण पाठोहारा।

इस लोकगाथा में जिस बनिए का वृत दिया गया है वह सत्यनारायण की कथा के वृत के अति निकट है।

माता 'कालका', 'माता सीतला', 'माता सुकराला' और देवी बाला सुन्दरी की लोकगाथाओं में भी लोक तत्व अधिक मुखरित हुआ है। माता सुकराला को 'मल्ल भवानी' के नाम से भी अभिहित किया जाता है, अतः इस देवी स्थान की परिगणना देवी पीठ के रूप में भी की जाती है। सुकराला लोक गाथा के अनुसार चम्बा के राजा उम्मेद सिंह ने देवी कृपा से खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करने के बाद देवी मन्दिर का निर्माण किया। लोक गाथा की कुछेक पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

धुर चम्बे दा इट्टां मंगाई धुर चम्बे दा पानी।
दिन-दिन बारें मंगलवारें भवन दी नींव दबाई।
चम्बे दे ऊमेदसिंह राजै दित्ता भवन बनाई।
दित्ता भवन बनाई माता दा झंडा झूलन लाई।

विद्वानों का विश्वास है कि डुग्गर की जिन देवियों को पशु बलि से तुष्ट किया जाता है उनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आदिम जातियों से अवश्य है।

डुग्गर में उपलब्ध अधिकांश लोकगाथाएँ ग्राम देवताओं अथवा कुल देवी अथवा कुल देवताओं की है। इन गाथाओं की संख्या सैकड़ों में है।

श्री ओम गोस्वामी के शब्दों में "कुलदेवता से तात्पर्य उस अदृश्य शक्ति से है, लोकमानस जिसका प्रत्येक शुभ कार्य पर स्मरण करना अनिवार्य मानता है। इतना ही नहीं उसे उस परिवार, कुल या जाति की मुख्य उपास्य शक्ति के रूप में भी जाना जाता है। विश्वास किया जाता है कि यह शक्ति प्रत्येक विपत्ति से उस कुल के सदस्यों की रक्षा करती है। अपने मान या अनादर के प्रति यह शक्ति जागरूक रहती है, तथा अपने से सम्बद्ध कोई कोताही होने पर उचित दंड भी देती है।" देव प्रतिष्ठापन के श्री ओम गोस्वामी ने मुख्य अभिप्राय निम्नलिखित बताये हैं :—

1. वंश वृद्धि
2. धन धान्य तथा फसल की सम्पन्नता
3. सम्पत्ति की रक्षा।
4. पशुओं के आरोग्य की कामना तथा
5. आधि-व्याधि से रक्षा।

डुग्गर में उपलब्ध कुल देवता अथवा कुल देवियों की लोकगाथाओं का अध्ययन करने से एक बात सुस्पष्ट हो जाती है कि कुल देवता अथवा कुल देवी के साधारण पुरुष या स्त्रियां हैं, जिन्होंने अपने जीवन में असाधारण मृत्यु का वरण किया। असाधारण मृत्यु का वरण करने वाले लोकनायकों में बाबा जित्तो, दाता रणपत, बाबा थोलू, दाता मेई मल्ल के नाम उल्लेखनीय हैं। बाबा जित्तो ने सामंतवादी व्यवस्था की क्रूरता के विरुद्ध यह कह कर आत्मघात किया :—

रुढ़ी गेआ धर्म थ्वाड़ा मैह् तेआ, त्रुट्टी मित्रोचारी।
रुक्खी कनक नि खायां मैह् तेआ, दिन्नां मास रलाई।

शोषितों के रुधिर से पला सामंतवाद का प्रतिनिधि बीरसिंह छल कपट, जोर जबरदस्ती से जित्तो के अधिकार को हड़पना चाहता था। शोषक और शोषित के मध्य घटित इस संघर्ष में विजय किसकी हुई ? इसका उत्तर तो बाबा जित्तो के उन लाखों श्रद्धालुओं की करुण आंखों से मिलता है, जो यह स्वीकार करते हैं कि अपना बलिदान देकर बाबा जित्तो ने लाखों निरीह तथा दुःखी किसानों को जुबान दी। न्याय का पक्ष लेने वाले दाता रणपत को जागीरदार बांगी की क्रूरता का शिकार होना पड़ा और इसी भांति मईमल्ल अपने स्वाभिमान की रक्षार्थ शहीद हुआ!

डुग्गर में ऐसे निर्दोष लोगों की संख्या भी कम नहीं है। जो सामंतवादियों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अकारण या किसी कारण मृत्यु का ग्रास बने। बाबा थोलू की लोक गाथा एक ऐसे अबोध बाल महापुरुष की गाथा है

जिसकी बलि तांत्रिकों के आह्वान पर मरोली के सामंत ने अपने निर्माणाधीन दुर्ग की नींव रखते समय दी।

लोक गाथाकारों ने सामंतीय व्यवस्था के विरुद्ध अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति जिस तीव्र स्वर से की है, उससे लगता है कि जन साधारण के मन में सामंतों के प्रति घृणा थी। जोगी और गारड़ी नामक जातियों के लोक-गाथाकारों ने एक भी लोकगाथा सामंतों की प्रशंसा में नहीं लिखी है। इन लोक गाथाकारों ने सामंतों द्वारा अवहेलित तथा प्रताड़ित उन महापुरुषों को देव पद दिया जो अपने आदर्शों की रक्षार्थ शहीद हुए। लोक गाथाकारों ने उन व्यक्तियों पर भी लोक गाथाएँ सृजित कीं जिन की हत्या अन्य लोगों ने किसी लोभ या स्वार्थार्थ की। दाता लीखो, दाता हल्लो, बावा भोतो, दाता रंगू, दाता बाल्ला, बाबा भटोला, बावा सरदारी शहीद, बावा सूरज शहीद, बावा भंगी, बाबा कौड़ा, बावा काह्न, बाबा अम्बो, बाबा वदना, बाबा लोंडना आदि डुग्गर के अन्य प्रसिद्ध लोकदेवता हैं। जिनकी लोक गाथाएँ उपलब्ध हैं। इन लोकदेवताओं का चरित्र निःसन्देह किसी भी दृष्टि से असाधारण अथवा अलौकिक नहीं है, किन्तु इनकी मृत्यु असाधारण है, अतः ये शताब्दियों से डुग्गर समाज में पूज्यनीय हैं।

लोकदेवताओं की भाँति डुग्गर में लोकदेवियाँ भी समादृत एवं सम्मानित हैं। लोकदेवताओं की भाँति लोकदेवियों की गाथाएँ भी उपलब्ध हैं। लोकदेवियों में राजवहु रुल्ल की लोकगाथा अतिकरुणाजन्य है। राजवहु रुल्ल ने लोक-कल्याणार्थ अपने प्राणों की आहुति दी। उसकी बलि से वरुण सन्तुष्ट हुआ और शताब्दियों से प्यासी भूमि उर्वरा हुई। किन्तु राजबहु रुल्ल का वियोग उस का पति सहन न कर सका और उसने अपना माथा रुल्ल की समाधि से इतने ज़ोर से टकराया कि वह भी वहीं भूमिसात हो गया। बुआ भागां की लोक गाथा से यह ध्वनित होता है कि क्रूर सामंतों के विरुद्ध न केवल पुरुष वर्ग ने अपितु नारी वर्ग ने भी आवाज़ उठाई। थड़ा कलवाल की बुआ भागां की क्रांतिकारी गति-विधियाँ स्थानीय सामंत के लिए असहनीय थीं। बुआ भागा चाहे सामंत की सशक्त सेना से लोहा न ले सकी किन्तु सामंत की सेना भी उस अकेली अबला को कैद करने में असफल रही क्योंकि सेना के हाथ पड़ने के पूर्व ही वह जीवन की कैद से मुक्त हो चुकी थी। इसी भाँति बुआ कौड़ी, दाती लाड्डो, बुआ मक्खा, बुआ अमरो, बुआ भुक्खी, बुआ शीला, बुआ सत्यवती, दाती नागरु, दाती तृप्ता, बुआ रत्नो, बुआ सोवां आदि कुलदेवियों की लोकगाथाएँ डुग्गर की वेदनाजन्य नारी की सच्ची गाथाएँ हैं, जिन्होंने सामाजिक अवहेलनाओं की प्रति-क्रिया स्वरूप अपने प्राणों की आहुति दी।

डुग्गर में कुछेक ऐतिहासिक गाथाएँ भी उपलब्ध हैं जिनमें मियां नाथ, अमरसिंह जन्दराहिया, राजा किरपालदेव, राजा जगत पठानियाँ, रामसिंह

पठानियाँ, मियां डीडो, वाजसिंह, शमसराज़ बल्ली, राजा गजेसिंह, राजा हीरा-सिंह, वजीर रत्नू, आदि की लोकगाथाएँ उल्लेखनीय हैं। अधिकांश ऐतिहासिक गाथाएँ दरेस जाति के लोक गाथाकारों द्वारा सृजित हैं, अतः कई विद्वान इन गाथाओं को दरेसगाथाएँ नाम से भी अभिहित करते हैं। दरेस प्रायः भाटों की भाँति केवल राज प्रशंसा पर आधारित गाथाएँ ही गाते थे अतः उनकी गाथाएँ राजदरबारों में अथवा राजपरिवारों में ही अधिक प्रचलित थीं। निःसन्देह आजीविका विहीन कई दरेस इन गाथाओं का गायन गाँव-गाँव में भी करते थे किन्तु इस स्थिति में उनका लक्ष्य केवल मात्र लोक-मनोरंजन ही होता था। दरेस जाति के लोग मुसलमान थे। पाकिस्तान बनने के बाद अधिकांश दरेस परिवार पाकिस्तान चले गए और वे अपने साथ डुग्गर की सैंकड़ों दरेस गाथाएँ भी ले गए। एक वयोवृद्ध दरेस से डॉ० अशोक जेरथ ने जो आठ दरेस गाथाएँ संकलित कीं, उनका लोक वार्ता की दृष्टि में विशेष महत्व है।

डुग्गर में प्रणय गाथाएँ भी उपलब्ध हैं। डोगरी प्रणय गाथाओं का विद्वानों ने मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया है—अस्थानीय प्रणय गाथाएँ और स्थानीय प्रणय गाथाएँ। अस्थानीय प्रणय गाथाओं पर सूफी गाथाओं का हलका प्रभाव है किन्तु स्थानीय गाथाएँ बाह्य प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हैं। राजा हौंस और ढोल बादशाह की गाथाएँ अस्थानीय गाथाएँ हैं और कुंजू चैंचलो, सुन्नी भुखू आदि गाथाएँ स्थानीय गाथाएँ हैं। कई लोक वार्ताविद कुंजू चैंचलों और सुन्नी भुखू की लोक गाथाओं की परिगणना गीतिका विधा के अन्तर्गत भी करते हैं। किन्तु ओम गोस्वामी अपने तर्कों से यह सिद्ध कर चुके हैं कि ये गाथाएँ हैं और लोकगाथा के लगभग सभी तत्व इनमें अन्तर्हित हैं।

डोगरी लोकगाथाएँ न केवल कथ्य की दृष्टि से उच्चकोटि की रचनाएँ हैं अपितु कला पक्ष की दृष्टि से भी इन गाथाओं का विशेष महत्व है। इन में एक ओर यदि सभी रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है तो दूसरी ओर इनका आलंकारिक सौंदर्य भी प्रशंसनीय है। इन लोकगाथाओं में अनुप्रास, उपमा, रूपक, निदर्शना, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इन लोकगाथाओं का प्रतीक विधान भी स्तुत्य है। नाथ पंथ अथवा योग परक गाथाओं में लोकगाथाकारों ने योग से सम्बन्धित कई विषयों की व्याख्या प्रतीक योजना द्वारा ही की है। इन लोक गाथाओं में उक्ति वैचित्र्य और छन्द योजना भी सराहनीय है। प्रो० रामनाथ शास्त्री के मतानुसार अधिकांश डोगरी लोकगाथाओं में अठाईस मात्राओं का प्रयोग हुआ है। इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राओं पर यति है और अन्तिम दोनों वर्ण अनिवार्य रूप से गुरु हैं। सभी लोकगाथाएं गेय हैं अतः इन में संगीतात्मकता का तत्व भी समाहित है।

लोकपरम्परा ने डोगरी लोकगाथाओं को दो वर्गों कारक और बार में

विभाजित किया है। जिस लोकगाथा में देवत्व है वह कारक है और जिस गाथा में किसी ऐतिहासिक अथवा अन्य किसी पुरुष का यशोगान है वह 'वार' है। किन्तु आधुनिक लोक वार्ता के विद्वानों ने लोकगाथा को एक पारिभाषित अर्थ में ग्रहण किया है और विषयानुसार इस का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है।

डोगरी लोकगाथा विधा पर जिन विद्वानों ने अनुसन्धान कार्य किया है उनमें श्री ओम गोस्वामी, प्रो० रामनाथ शास्त्री, डा० अशोक जेरथ, तथा श्री बालकराम बराल, आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं।

डोगरी लोक साहित्य में लोक-गाथा विधा अति समृद्ध है। अब तक प्राप्त एक सौ चालीस लोकगाथाओं का संकलन किसी न किसी रूप में हो चुका है। अब आवश्यकता इस बात की है कि अनुपलब्ध लोक गाथाओं की भी खोज की जाए और उन्हें लिपिबद्ध कर लिया जाए।

वास्तव में डोगरी लोक-गाथाएं डुग्गर के लोग जीवन का विश्वकोश हैं।



कश्मीरी जन-जीवन में धार्मिक सौहार्द

□ अवतार कृष्ण राज़दान

कश्मीर भारत का मुकुटमणि होने के साथ-साथ एशिया महाद्वीप का एक सुन्दरतम स्थान माना जाता है। यदि भौगोलिक दृष्टिकोण से इसका सर्वेक्षण किया जाए तो ऐसा लगता है कि यह क्षेत्र एकदम संसार से कटा हुआ है, क्योंकि इसके हर छोर पर हमें दुर्गम पर्वतमालाओं की श्रृंखलाएँ उत्तरोत्तर प्रवृद्धि के साथ खिसकती हुई नज़र आती हैं और उस पर तुर्रा यह कि इसकी इन पर्वत श्रृंखलाओं के भीतर या आस-पास कई ऐसे स्थान हैं जिनका कश्मीर के भूगोल में अपना एक विशेष स्थान है। इनके बिना कश्मीर की उत्पत्ति सिद्ध नहीं हो सकती न इनका कश्मीर के बिना कोई महत्व है, भले ही ये भारी हिमपात होने पर कई महीने तक कश्मीर से कट कर रह जाते हैं। यहां इनका उल्लेख करना ठीक नहीं रहेगा क्योंकि इन सब स्थानों को लेकर ही हम कश्मीर की उत्पत्ति मानते हैं। किन्तु आज तक क्या कभी हमने संसार के किसी ऐसे स्थान का नाम सुना है जिसका अपना एक विशेष जन-जीवन नहीं है ? नहीं, ऐसी बात नहीं है। कश्मीर में भी अपना एक विशेष जन-जीवन का प्रवाह रहा है जिसके संबंध में विद्वानों का कहना है कि यह मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा सभ्यता के निकट ठहरता है। इस तरह की काल-गणना कश्मीर के नियोलिथिक-युग 'बुर्ज़होम' सूत्र संकेत से एकदम निकट ठहरती है। यहीं से कश्मीरियों के धार्मिक और सांस्कृतिक कृत्य शुरू होने लगे हैं और तब से आज तक इस भू-क्षेत्र में कई धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियां होती आई हैं, जिनमें तिब्बत की धर्म-परंपरा, मध्य-एशिया तथा भारतीय संस्कृति सम्मिलित है।

प्राचीन काल में कश्मीर में नाग जाति के आबाद होने के प्रमाण मिलते हैं। जिनके संबंध में कहा जाता है कि ये झील या चश्मों के तटों पर रहा करते थे। इनके संबंध में विद्वानों के कई मत हैं अलबत्ता इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि ये अनार्य थे। इनका झील या चश्मों के तटों पर आवास करना आज

भी यहां की लोकोक्तियों में प्रचलित है। कश्मीरी में आज भी चश्में या झील को नाग कहते हैं और इसके पानी को गंगा-जल से भी पवित्र मानते हैं। उस समय इस जन-जाति का धर्म क्या था, निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। फिर भी नाग-पूजा आजकल कश्मीर में ही नहीं बल्कि यह भारत के कई भागों में भी की जाती है। अनार्य होने के कारण यहां की नाग-जाति का अपना अलग स्थान था। किन्तु इनके धर्म-सौहार्द की भावना उस समय आंकी जाती है जब इनके समय इस भू-स्थली पर यक्ष जाति के पिशाचों ने प्रवेश किया और दोनों जातियों में परस्पर युद्ध छिड़ने पर भी अंत में नाग-जाति के लोगों ने उनके साथ समझौता करके सौहार्द से रहना स्वीकार किया और उस समय उनका आपसी मेल-जोल ऐसा ही था जिस तरह भारत में द्रविड़ और आस्ट्रिक लोगों का रहा था। वे मानव-मूल्यों को व्यक्तिगत और जाति मर्यादा की संज्ञा में बांटने लगे और वे इसको किसी भी मूल्य पर नष्ट नहीं करना चाहते थे और जब पिशाच पूरी तरह बसने लगे तो आर्यों ने पिशाचों के कुछ उत्सवों को कश्मीरी समुदाय में रचने का निर्देश दिया। इनमें 'यज्ञ-अमावसी' 'गाड्‌बत' 'कापुन्यम' आदि सम्मिलित हैं जो अब यहां के त्योहार बन गए हैं। इतना ही नहीं, पिशाचों और नागों के मध्य इतने मधुर संबंध स्थापित होने लगे कि पिशाची को आर्य भाषा परिवार में सम्मिलित किया गया और संस्कृत नाटकों में इसका प्रयोग होने लगा। यहां मेरे कहने का मतलब यह है कि कश्मीर के आदि जन या नाग-जाति के धर्म-सौहार्द की भावना को देखकर ये आज भी हमारे दिल में जगह बनाए हैं। यह सत्य है कि इस समय यहां किसी खास नाग-जाति का वास नहीं है तथापि नाग या चश्मे को अब भी लोग पवित्र मानते हैं। आज भी नाग या चश्मे की मछली यहां का मुसलमान भी खाने से परहेज़ करते हैं। इस जन-जाति का हम आज भी इतना आदर-सत्कार करते हैं कि कश्मीरी पंडितानी अपना सुहाग 'डेजहोर' (सर्पनुमा सोने का आकार) कानों में बांधकर मानती हैं और यहां तक कि कोई-कोई महिला ऐसी भी देखने को मिलती है जिसके शिर का पहनावा 'तरंग' (सर्पाकार रूप में टोपी) होता है। यहां के दूर-दराज़ गांव में कुछ मुसलमान महिलाएँ ऐसी भी देखने को मिलती हैं जो कोबरा-नुमा शक्ल की एक खास टोपी पहनती है जिसको कश्मीरी में 'क़साब' कहते हैं। यहां कहने का तात्पर्य है कि किसी मत के सिद्धान्तों पर किसी दूसरे मत के मानने वालों का अमल करना धर्म-सौहार्द का जीवंत प्रमाण हो सकता है। इससे एक और बात सामने आती है, वह यह कि नाग और पिशाच जातियों के आपसी धर्म-सौहार्द से ही नीलमत की रचना सामने आयी है जिसमें हमें कश्मीर के पवित्र स्थानों, झीलों और त्योहारों का विवरण मिलता है। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि भारतीय आर्य यहां धर्म-विश्वास लेकर प्रतिवर्ष आते थे और शीतकाल शुरू होते ही वापस मैदानी क्षेत्रों की ओर प्रयाण करते थे। वे तो पूरे वर्ष तक यहां

ठहर नहीं सकते थे। संभवतया यह प्रयाण नाग और पिशाचों के भयवश प्रचलित हुआ होगा। किन्तु समय परिवर्तन के साथ-साथ वे यहां स्थायी तौर पर रहने लगे क्योंकि एक-दूसरे की सभ्यता का आदर करने की भावना के फलस्वरूप दोनों के मध्य मधुर संबंध स्थापित हुए। यहां एक और बात सामने आती है, वह यह कि यद्यपि इस समय नीलमत का रचनाकाल एवं रचनाकार वाद-विवाद का विषय बन गया है तथापि कुछ सूत्रों के आधार पर यह मानना पड़ता है कि यह मत उस समय नाग, पिशाच और आर्यों के परस्पर धार्मिक सौहार्द से ही अस्तित्व में आया है और इस समय इस पर प्रकाश डालना मुश्किल है, क्योंकि विद्वानों की इस पर अलग-अलग राय है। फिर भी हम यही कह सकते हैं कि नीलमत पुराण ने नाग और पिशाच के आपसी धर्म-सौहार्द में अपना अनुपम योगदान प्रदान किया है। यहां तक कि इसमें वर्णित सौहार्द की भावना आज भी लोगों को अपने प्रभाव में लिए हुए है। हम इन तरह भी कह सकते हैं कि उस समय नाग और पिशाचों के आपसी मेलजोल से कश्मीर में एक नया धर्म-दर्शन सामने आया जिसने यहां के जन-जीवन में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और कश्मीरियों को अन्य जातियों से हटकर अपनी एक विशेष पहचान से सारे भारत में सम्मानित किया।

कश्मीर में आर्यों की संस्कृति और उसके बाद के सांस्कृतिक लेन देन के फलस्वरूप यहां की जनता विभिन्न देवी-देवताओं को अपना आराध्य मानने लगी। हवा, सूर्य, अग्नि, उषा, नभ, इन्द्र, यम आदि को लोग देवता मानकर इनको पूरी श्रद्धा के साथ पूजने लगे, जिसके कारण लोग वर्गों और समुदायों में बंटने लगे। इससे इनके बीच ईर्ष्या और नफरत की दीवार खड़ी हो गयी। सभी अपने-अपने देवता को प्राथमिकता देकर एक दूसरे से लड़ने के लिए उतारू हो गए। परन्तु वेदान्त ने भी कश्मीर में दार्शनिक प्रकाश फैलाया – कि हर इन्सान भगवान् के नूर की एक किरण है और हर इन्सान में पांच चीज़ों का होना जरूरी है जो इस प्रकार है—अन्नम अथवा जीवन, परनम अथवा मन, मनस अथवा बुद्धि, विजननम् अथवा आत्मिक शान्ति और आनन्दम अथवा खुशी। किन्तु इसके बावजूद यहां ऊँच की दुर्भावना पूरी तरह मिट न पाई और तब इस तरह की प्रदूषित हवा को साफ़ करने के लिए भारत के कुछ विशेष स्थानों की तरह कश्मीर के लोगों ने बौद्ध-धर्म को अपना लिया और इस तरह से धार्मिक सहिष्णुता का एक और उदाहरण देकर इस महान भावना के उन्नयन में अपना अनुपम योगदान प्रदान किया। यही कारण है कि एक समय वह भी आया जब कश्मीर बौद्ध-धर्म का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। इतिहास साक्षी है कि बौद्ध-धर्म के प्रचार-प्रसार से ही कश्मीर (भारत), चीन, और तिब्बत एक दूसरे के निकट आने लगे। वस्तुतः कश्मीर के बौद्ध-दार्शनिकों ने ही तिब्बत और चीन में बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार किया जिसका वहां अब भी और खास-

कर तिब्बत में पालन किया जाता है। महाराजा अशोक (173-321 ई०) का कश्मीर आगमन एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। विद्वानों के अनुसार इनके पहले ही महाराजा सुरेन्द्र ने यहां आकर बौद्ध-विहार और मठ बनाए थे और महाराजा अशोक के समय बौद्ध धर्म सुदृढ़ता से स्थापित हुआ। अशोक ने तीसरा बौद्ध-सम्मेलन पाटलि-पुत्र में और चौथा बौद्ध-सम्मेलन कश्मीर में बुलाया जिसमें एक तिब्बती लेखक के अनुसार 1500 विद्वानों ने भाग लिया था। इसमें 500 ब्राह्मण, 1500 अरहट और 500 बौद्धिस्तु भी शामिल थे जो भारत, चीन और तिब्बत से संबंध रखते थे। कहा जाता है कि इसमें बौद्ध-धर्म की उस शाखा पर विचार किया गया जो वेदान्त और भागवत् के बहुत निकट है। यह शाखा भगवान् के अस्तित्व की कायल है। यह शाखा देवी-देवताओं को मानती है और मंदिरों में पूजा-पाठ करने पर ज़ोर देती है। इस शाखा के मतावलंबी तथागत को देवता मानते हैं। इसके मानने वाले मूर्ति-पूजा पर विश्वास करते हैं और उनके अनुसार मुक्ति या निर्वाण प्राप्त करने का एकमात्र तरीका है अपनी इच्छाओं पर काबू पाना। विद्वानों के अनुसार इस बौद्ध सम्मेलन की सारी कार्यवाही उस समय लिखित रूप में ताम्र पटों पर अंकित कर दी गयी थी जो यहां के एक गांव कुण्डलवन में कहीं भूमि के नीचे सुरक्षित हैं। बौद्ध-दर्शन के इन नियमों को कश्मीरी-जन मानस कनिष्क से लेकर चीनी पर्यटक ह्वेनसांग के यहां आने तक बराबर अपने जीवन में कार्यान्वित करते रहे किन्तु इसके साथ-साथ यहां और भी कई धर्म या दर्शन प्रकाश-पुंज बनकर परम तत्व का रास्ता दिखाते रहे। इनमें सांख्य, योग, शक्ति, शाक्त और शैव-दर्शन उल्लेखनीय हैं। यह दूसरी बात है कि महाराजा कनिष्क के बाद यहां बौद्धों और ब्राह्मणों के बीच में भयंकर खाई पैदा हो गयी, किन्तु इन धर्म-दर्शनों से यहां की जनता में धर्म-सौहार्द और धर्म संभाव में कोई आंच नहीं आ पाई और इनके मानने वाले अथवा परिपालक एक दूसरे पर किसी भी तरह या किसी भी उद्देश्य से टक्कर नहीं लेते हैं। कारण यह कि सभी धर्मों का उद्देश्य इन्सान को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति के रास्ते पर अग्रसर करवाना है। इसके अतिरिक्त इनका संबंध वेद और भागवत से है। यद्यपि यहां की जनता ने इन धर्मों का परिपालन धीरे-धीरे किया तथापि इससे बौद्ध-धर्म या दर्शन की मशाल यहां बुझने-सी लगी और शैव-धर्म को यहां के लोग पूरी आज़ादी के साथ अपनाने लगे। हां, यह वह शैव-धर्म नहीं है जिसकी मशाल आज भी दक्षिण-भारत में जलती है, बल्कि यहां जिस शैवमत ने जन्म लिया वह असली शैवमत से भिन्न है और वह कश्मीरी शैव-दर्शन कहलाता है। मेरे अनुसार उस समय यह दर्शन इसलिए अस्तित्व में आया होगा क्योंकि यहां का जन-जीवन विभिन्न धर्म-गुत्थियों को सुलझाने में असमर्थ रहा था क्योंकि ये विभिन्न धर्मों का आदर-सत्कार करने पर भी यह समझ नहीं पाते कि कौन-सा धर्म अच्छा है और कौन-सा बुरा। इसलिए

एक ऐसा मत अस्तित्व में आया जिसमें सब धर्मों का निचोड़ हो और यही कारण है कि कश्मीरी शैव-दर्शन वेदान्त, बौद्ध, सांख्य, शक्ति, वैष्णवी और शैवी सिद्धान्तों को एक सुन्दर गुलदस्ते के रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें योग भी है और नीलमत के कुछ असूल भी शामिल हैं।

कश्मीरी शैव-दर्शन की नींव तीन स्तंभों पर खड़ी है। ये तीन स्तंभ हैं— नर, शक्ति और शिव। दूसरी बातों में इनका नाम ऐसा भी हो सकता है पित, पाशि और पशु अथवा शिव, शक्ति और अणु या पर, अपर और अपरा पर। चूंकि यह दर्शन तीन स्तंभों पर आधारित है, इसलिए इसको त्रिका या तीन गुणों वाला दर्शन कहा जाने लगा। इसके अन्तर्गत शिव या परम्शिव ही जीवन का सत्य है। यही सत्य सबका आधार है। विश्व में सब कुछ इसी पर निर्भर करता है। शिव ही सत्य है और यह सत्य शक्तिमान है। इस सत्य की पहचान सबको होनी चाहिए। यही सत्य आदि है और यही अन्त। शिव का कोई आकार नहीं वह निराकार है। वह समय और स्थान के बन्धन से आज़ाद है। वह एक ऐसा सत्य है जो हमेशा सत्य था और हमेशा सत्य ही रहेगा। शिव पूर्ण है और अन्तहीन है। वस्तुतः यह दो शक्तियों का निचोड़ है और इनको नर और स्त्री कहा गया है। वस्तुतः शिव की शक्ति वह रूह या आत्मा है जिसको नर समझना चाहिए और स्त्री या शक्ति तब तक अपूर्ण है जब तक उसके साथ नर शामिल हो और इसी प्रकार शिव तब तक शव है जब तक उसके साथ स्त्री या शक्ति शामिल न हो। इन्हीं से यह प्रकृति बनी है। कश्मीरी हिन्दुओं का बहुमत अभी भी शैव-दर्शन पर निष्ठा रखता है।

किन्तु समय की निर्झरी हमेशा अपना अगला रास्ता ढूंढ़ती हुई आगे बढ़ती रहती है। ईरान से सूफियों-सन्तों या मुसलमान धर्म-प्रचारकों ने प्रवेश किया। इनके धर्म-प्रचार में उस समय कश्मीरियों को अपने धर्म की कई बातों का गंभीर अहसास होने लगा। फलस्वरूप सूफियों की धार्मिक विचार-धारा का प्रभाव कश्मीरियों पर काफी मात्रा में पड़ा। इसका प्रमुख कारण यह है कि दोनों इस संसार को भ्रम या माया मानते हैं। दोनों का कहना है कि जीवन का सार सिर्फ परमतत्व है या हम इस तरह कह दें कि उस समय दोनों समुदायों ने महसूस किया कि दोनों की धर्म विचार-धारा में ऐसी समान बातें हैं जो त्रिक-दर्शन, योग और वेदान्त के असूलों से मिलती-जुलती हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ एक का वर्णन नीचे किया जाता है :—

1. भगवान् एक है। उसकी जात सब से ऊँची और निराली है। वही

मनुष्य के अस्तित्व का स्रोत है। उसकी हस्ती ही मात्र वह हस्ती है जो दुनिया की सबसे बड़ी हस्तियों में से एक है।

2. वेदान्त के ब्रह्मा या शिव या हमारे त्रिक्-दर्शन के शिव का भी परमतत्व या उसी बड़ी हस्ती से साम्य है।

3. जीवनदान भगवान् की इच्छा पर होता है और इसका अस्तित्व तब तक कायम है जब तक यह सृष्टि है।

4. सूफियों के अनलहक़ (मैं सत्य हूँ) का भी वही अर्थ है जो शैव-दर्शन में 'शिवाहम्' (मैं शिव हूँ) का है। वस्तुतः यह वही शिवाह्म है, जिसका कश्मीरी में विकृत रूप 'सोहम्' है।

5. मनुष्य का जीवन उसी का वरदान है। उसके अन्दर वही गुण विद्यमान हैं जो असली स्रोत या उसके सत्य में है।

भले ही इस समय कश्मीरियों के जन-जीवन के प्रवाह में जातियों के रूप में कई नदियां बहती हैं किन्तु सबों के आपसी धर्म-सौहार्द की भावना में उपरोक्त धार्मिक उसूल किसी-न-किसी रूप में रच-पच गए हैं। यही कारण है कि शताब्दियों से यहां के लोगों का जीवन-प्रवाह प्रायः दो समान नदियों जैसा रहा है। गत छः सौ वर्षों से यहां का जनजीवन इस्लाम तथा हिन्दुओं की समान विचार-धारा की बहती हुई नदियों की तरह प्रवाहित है। दोनों एक-दूसरे के धर्म का सम्मान करते हैं। इतिहास साक्षी है कि यहां कई मुसलमान राजाओं की हिन्दुओं की रीति के अनुसार ताजपोशी की जाती थी। तत्पश्चात् वे सिंहासनारूढ़ होते थे। दोनों समुदाय अलग-अलग धर्म होते हुए भी साधारण जीवन व्यतीत करते हैं। दोनों का दैनिक आहार साग-भात है, ठीक उसी तरह, जिस तरह कश्मीर के बाहर के प्रदेशों में लोग दाल-रोटी खाते हैं। दोनों के रीति-रिवाज़ लगभग एक जैसे हैं। हिन्दुओं का मंगलाचरण, देवी-देवताओं की वन्दना और वैदिक मंत्रों का पाठ तथा मुसलमानों की अज़ान, निमाज़ तथा अन्य अनेक मुस्लिम कृत्यों की भावना तो मात्र एक ईश्वर में निहित है। यहां धर्म-सौहार्द का आदर्श प्रमाण तो यह है कि जहां एक छोर पर मंदिर है तो इसके दूसरे छोर पर मस्जिद भी मिलती है। हिन्दुओं के साथ-साथ मलिक वंश के मुसलमान परिवार भी अमरनाथ की कष्टसाध्य यात्रा करके अपनी मनोकामना पूरी करते हैं। कोई भी मुसलमान 'तुलमुल' या क्षीरभवानी की राह जाने से पहले मांस नहीं खाएगा। इसी तरह हिन्दू मुसलमानों की कई ज़ियारतों में भाग लेकर अपने मन की मुराद पाते हैं। बहुत से मुसलमान परिवारों की जात

हिन्दुओं की है जैसे कोकरू, किचलो, कोल, दर आदि। दोनों सम्प्रदायों में बड़े-बड़े पीर-फकीर, मस्ताने और संत हुए हैं, किन्तु आश्चर्य यह है कि दोनों ने अपने श्रद्धालुओं को सोहम् या अनलहक़ का ही उपदेश दिया। इस तरह हम देखते हैं कि कश्मीर की उत्पत्ति होने से आज तक यहां जिन धर्मों का विकास हुआ, भले ही उनके कारण कुछ भी रहे हों, किन्तु कश्मीरियों के जन-जीवन में धर्म-सौहार्द या भाईचारे और सभी धर्मों को समान आदर देने की भावना हर समय उजागर होती देखी गयी है और इसके लिए यहां के लोगों ने कभी संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाया। यदि ऐसा न हुआ होता तो कश्मीर के बरसों पुराने इतिहास की कड़ियां न जुड़ पाई होतीं और कश्मीरियों के जन-जीवन का जो प्रवाह हमें आजकल देखने को मिलता है, वह हम कभी देख न पाते।

□

डोगरी लोक-गीतों में श्रीराम

□ रामनाथ शास्त्री

डोगरी लोक-गीतों के उपलब्ध 20-25 संकलित प्रकाशनों में राम-चरित से जुड़े प्रसंगों की खोज करने लगा तो यह देख कर आश्चर्य हुआ कि इन गीतों में बाल-राम की कौतुक-क्रीड़ाओं का जैसे एकदम अभाव था। उसका स्थान यशोदा-नंदन श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं ने ले लिया था। लोक-मानस के 'बाल कांड के झूले' पर **बाल गोपाल** का यह एकाधिकार बड़ी रोचक स्थिति पैदा करता है। डोगरा मातृत्व के वात्सल्य ने जहां अपनी गोद के शिशु को बाल-कन्हाई के रूप में चित्रित किया है, वहां उस शिशु की तरुणाई की लीलाओं में, **दूल्हा राम** का ही एकाधिकार झलकता है। ऐसा क्यों ? डोगरा लोक-मानस के द्वारा शिशु-अवस्था तथा तरुण-अवस्था से जुड़ी लीलाओं के लिए अलग-अलग आदर्श चुने जाने के पीछे अवश्य ही कुछ सहज कारण रहे हैं। श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं की लोक-प्रियता का आयाम बड़ा विशाल रहा है। बाल कृष्ण की लीलाओं का अनेकों हिन्दी कवियों ने अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। सूरदास जैसे अमर गायक के पदों में अंकित ये बाल-लीलाएं उत्तर भारत में आज भी अत्यन्त लोक-प्रिय हैं। श्री राम की बाल-लीलाओं को सूर के समकक्ष गायक साधक उपलब्ध नहीं हुआ। तुलसी ने अवश्य ही राम की बाल·लीलाओं का चित्रण कई पदों में किया है, लेकिन वे पद कृष्ण की बाल-लीलाओं से जुड़े पदों के समान लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सके। इसी लिए डोगरा मातृत्व के वात्सल्य ने अपनी गोद के शिशु को बाल कन्हाई के रूप में ही देखा है। कुछ डोगरी लोकगीतों में इस तथ्य की यह झलक देखें :

(i) **घर बसुदेवै दै जन्मेआ बालक**
जसोधा पलंग चढ़ी।
नंद करदा ऐ गौआं दान,
सुन्ने दे सिंग मढ़ी।

× × ×

(ii) घर नंद दै बज्जन बधाइयां !
जरमेआ जाया, गुद्दड़ पलेटेआ,
कुच्छड़ मिलेआ हरियां दाइयां !

× × ×

(iii) चन्नन कट्टी पंघूड़ा घड़ाया,
रेशमी डोरां न लाइयां ।
औंदे ते जंदे बसुदेव झुटांदे,
औंदे ते जंदे देवकी झुटांदी,
झुटेआं देन सब दाइयां ।

× × ×

डोगरी में 'बधावे' संज्ञक ये लोक गीत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं । लेकिन अपनी ब्याह-योग्य कन्याओं के लिए डोगरा लोक मानस ने श्री कृष्ण का, 'वर' रूप में वरण नहीं किया । श्री कृष्ण अपनी उन्मुक्त स्नेह-लीलाओं के कारण डोगरा मातृत्व को, वर रूप में आकृष्ट नहीं कर सके । दूल्हा के रूप में डोगरा माता-पिता अपनी कन्या के लिए, गोपिका-वल्लभ, राधा-रमण कृष्ण सरीखे रसिया वर की नहीं, राम जैसे एक पत्नीव्रती दूल्हे की कामना करते हैं । श्री कृष्ण से जुड़े पौराणिक विवरणों में तथा कृष्ण भक्त कवियों द्वारा रचे गए लीला-विवरणों में भी श्री कृष्ण की दूल्हा के रूप में वैसी विशिष्ट छवि अंकित नहीं मिलती जैसी कि दूल्हा राम की है ।

आइये, डोगरी लोक-गीतों के दर्पण में लोकमानस की यह पसंद देखें ।

कन्याओं के विवाह के समय घर में गाए जाने वाले डोगरी लोक गीतों को 'सुहाग' कहते हैं । यह भी एक तथ्य है कि डुग्गर की कन्याएं प्राय: बड़ी ही संकोचशील होती हैं, विशेषतया ग्राम-देहात की कन्याएं । और प्रचलित सामाजिक परम्परा के अनुसार माता-पिता ही अपनी कन्याओं के लिए रिश्ता ढूंढते हैं और उसे निश्चित करते हैं । वे रिश्ते प्राय: किसी मध्यस्थ की सिफारिश तथा उसके आश्वासन पर तय किए जाते रहे हैं । 'वर' को देखकर पसंद करने की प्रथा नहीं थी । माता-पिता उसे अपना सौभाग्य मानते थे कि उन्हें अपनी कन्या के लिए कोई रिश्ता कहीं मिल गया है । इन रिश्तों की सफलता या असफलता की बात कन्याओं के भाग्य पर छोड़ दी जाती थी । ऐसी स्थिति में, मूक पशुओं की तरह 'दान' कर दी जाने वाली, डुग्गर की कन्याओं की दबी और अनकही मनोभावनाओं को मुखरित करते हैं, ये डोगरा लोकगीत । जो बात वे अपने मुख से नहीं कह सकती थीं, उस को इन गीतों के माध्यम से उन्होंने बड़ी निर्भीकता से अभिव्यक्त किया है ।

अपने विवाह के सम्बन्ध में जो स्वप्न कन्या देखती रही है; विवाहित जीवन की जैसी एक दबी हुई चाह उसके मन में है, बहुत से डोगरी 'सुहाग' उन्हीं स्वप्नों तथा चाहों की तर्जमानी करते हैं। एक सुहाग में कन्या की माता उससे पूछती है कि ऐ बेटी तुम इस तरह इस वृक्ष की ओट में क्यों खड़ी हो ? क्या सोच रही हो ? सोच में डूबी उस कन्या की मनोभावनाओं को मुखरित करता हुआ यह 'सुहाग' है :

"मैं तां खड़ी ओ बाबल जी दे पास, बाबल बर ढूंडिये !
बर होऐ सिरी राम, देवर लछमण होऐ,
माता कौशल्या होऐ सास, दशरथ सौह्‌रा होऐ,
में ते मंगनी आं जुध्या जी दा राज,
पंघूड़े बैठी राज करां।"

इसी तरह एक अन्य गीत में डुग्गर की कन्या अपने आपको **'जनक की बेटी'** से एकाकार कर लेती है। किसी ने पूछा कि, " अरि तू किसकी बेटी है ? तेरा नाम क्या है ?" उत्तर मिला,—"मैं जनक राजा की बेटी हूँ और मेरा नाम सीता है।"

"कुस ते राजे दी तूं बेटड़ी, के ते रक्खेआ तेरा नां ?"
"जनक राजे दी मैं बेटड़ी, सीता जे रक्खेआ मेरा नां।"

कन्या का पिता भी, एक गीत में, अपने आपको राजा जनक के रूप में ही देखता है।

"कौन ब्याहे तेरी कन्या, कौन तरोड़ै तेरा धनख ? हे राम !"
"राम ब्याहे मेरी कन्या, सोई तरोड़ै मेरा धनख ? हे राम !"

इस गीत में 'धनुष तोड़ने' की बात, संभवत: उन कठिनाइयों तथा बाधाओं की प्रतीक है, जो कन्या के पिता को कन्या के लिए वर ढूंढने में सहना पड़ी हैं। लेकिन कन्या के मन की आशंकाएं भी जैसे धनुष से ही जुड़ी हुई हैं। उसके मन में आशंका उठती है कि यदि यह धनुष किसी से न टूट सका तो, हे सखि क्या मैं कुंआरी ही रह जाऊंगी ?

जे धनख नेईं तरुट्टै,
तां में रेही सेइयो, कुआरी जी !

डुग्गर के कंढी तथा **पहाड़ी** प्रदेश की कन्याएं प्राय: गौरवर्ण होती हैं। शारीरिक रूप-लावण्य के लिए तो वे ख्यात हैं ही। स्वभावत: इन कन्याओं के मन में, अपने जैसा ही गौरवर्ण पति पाने की चाह बनी रहती है।

"बाबल, इक मिकी पछोता बड़ा,
अऊं गोरी बर सांवला।"

क्या कन्या के मन में एक दबी सी आकांक्षा यह भी हो रही होगी कि जनकसुता के रूप में, उसने जिस **दूल्हा राम** की कामना की है, वह सांवला न होकर गौरवर्ण हो ?

एक अन्य सुहाग में कन्या को ब्याहने के लिए आने वाले 'वर' की वर-यात्रा का यह वर्णन देखिए जिसमें गाडियां हैं, गाड़ीवान हैं, हाथी हैं, उनके महावत हैं, ऊंट हैं तथा उनके 'सरवान' हैं, और दूल्हा राम स्वयं 'बंगले' में बैठे हुए हैं। लेकिन कन्या को लगता है कि वरयात्रा इससे भी बड़ी होनी चाहिए थी :—

गड्डां दे गडवान आए,
हाथियां दे हथवान आए,
घोड़ियाँ सुआर आए,
ऊंटा दे सरवान आए,
बौंगले बिच 'सिरी राम' आए।
अजें बी बाबल, जान्नी थोड़ी ऐ !

कल्पना किस तरह हमारे स्वप्नों को सहलाती-बहलाती है, यह बात इस सुहाग में वर्णित वरयात्रा में देखते ही बनती है।

एक और 'सुहाग' में **राम** तथा **रावण** दोनों को सीता के प्रत्याशी के रूप में आया हुआ दिखाया गया है। स्वभावत: यह सुहाग किसी कन्या के लिए, दो रिश्तों की प्रतिस्पर्धा को अंकित करता है। कन्या जिसे वर रूप में पसंद करती है, वही **राम** हो गया जो उसे स्वीकार्य नहीं है उसका **रावण** के रूप में प्रत्याख्यान किया गया है :—

बाबल-घर कन्या इक,
जान्नी दऊं जने दी आई !
जी, कुसगी देनी ऐ ए कन्या ?
कुन्ने जाना ऐ इत्थुआं खा'ली ?
जी राम गी देनी ऐ ए कन्या,
रावण जाना इत्थुआं खा'ली।

और यदि कन्या को अपेक्षित राम वर नहीं मिलता, और उसे किसी दूसरी जगह ब्याह दिया जाता है, तो उसका मानसिक विरोध कोई विस्फोटक रूप धारण नहीं करता। अभागी कन्या उस स्थिति को भी अपने "भाग्य का लेख" मान कर सहज ही सह लेती है :—

माऊ दै बस्स नेईं, स्हाड़े बाब्ल दै बस्स नेईं,

असें लेखें लिखेआ, वर पाया ऐ ।

× × ×

डोगरी लोक गीतों में, रामायण के नायक पुरुष श्री राम की चरित-गाथा के कुछ फुटकर अंश भी मिलते हैं। इन गीत-प्रसंगों से संपूर्ण राम-गाथा की रूपरेखा तैयार नहीं होती, क्योंकि ये गीत भिन्न-भिन्न स्थानों में, भिन्न-भिन्न समयों में, तथा भिन्न-भिन्न लोक-गीतकारों द्वारा रचे गए लगते हैं। इन गीतों में श्री राम का उल्लेख भी एक कथा-नायक के रूप में ही हुआ है । डोगरा लोक-मानस राम के प्रति एक सरल अपनापन अनुभव करता है, राम के लिए उनके मन में सहानुभूति है। इन गीतों के राम, श्री वाल्मीकि के कथा-नायक के समान मर्यादा-पुरुष, तथा लोक-मंगलकारी आदर्श पुरुष नहीं हैं। श्री तुलसी-दास के कथा-नायक के समान अलौकिक अवतारी पुरुष तो वे हैं ही नहीं । वे तो जैसे कोई उनके अपने प्यारे स्वजन ही हैं ।

एक डोगरी लोकगीत में शिकार खेलते समय अयोध्या के राजा दशरथ के हाथों श्रवण कुमार की हत्या का उल्लेख मिलता है :—

अंधला ते अंधली जलै दे प्यासे,
"बेटा सरवन, जल पलेआऽ !"
चन्नन रुक्खै कन्ने झोली टुंगियै-
सरवन, लेई कमंडल, पानियै गी जा !
जियो मेरे राम !
जिस बनै बिच बोलन मोर-कलाईं[1]
उस बन पानी नाईं । जियो मेरे राम !
जिस बनै बिच बोलन डिड्डू ते मीणक,
उस बल्ल पानियै गी जा ! जियो मेरे राम !
सारे बनै बिच सरबन फिरेआ,
इक छपाड़ी नजरी पेईं ऐ । जियो मेरे राम ।।
ज्योध्या दा चलेआ दशरथ राजा,
छप्पड़ी पर बैण, पट्ठर[2] बनाऽ । जियो मेरे राम ।।

1. मोरनी
2. शिकारी का मचान

जिस बेल्लै सरबन गड़वा भरेआ,
राजे दित्ता ऐ तीर चलाऽ। जियो मेरे राम !
तीर जो लगदे सरबन डिगदा,
पेआ रामो राम ध्याऽ । जियो मेरे राम !

(लोकगीत भाग 6)

× × ×

कथा-विकास की दृष्टि से यह गीत स्पष्टतया अधूरा है। श्रवण की हत्या के बाद का प्रसंग भी शायद मूल गीत में रहा हो, लेकिन प्रकाशित गीत इतना ही है। राजा दशरथ के हाथों श्रवण की यह हत्या एक प्राकृतिक कारण के रूप में, राम के वनवास का तथा राजा दशरथ के प्राणान्त का कारण बनी थी। पुत्र-शोक से संतप्त श्रवण के माता-पिता द्वारा राजा दशरथ को दिये गये शाप का उल्लेख इस गीत में नहीं हुआ। वह प्रसंग भी लोक-परम्परा को अवश्य ही ज्ञात रहा होगा।

इस गीत में डोगरा लोकमानस के अपने अनुभव तथा 'मोटिफ' द्रष्टव्य हैं। वन के किस भाग में पानी मिल सकेगा उसका संकेत अंधला ने श्रवण को यह कह कर दिया कि जिस प्रदेश में मोर तथा मोरनियों की आवाज़ें सुनाई दें वहां पानी मिलना निश्चित नहीं होता, लेकिन जहां मेंढकों की आवाजें होंगी वहां पानी अवश्य मिलेगा। ये दोनों बातें उस अज्ञात लोक गीतकार के अपने किसी प्रदेश की अनुभूति पर आधारित हो सकती हैं, लेकिन ये किसी व्यापक सत्य की सूचक नहीं हैं। मोरों वाले प्रदेशों में भी कहीं पानी सुलभ हो सकता है, तथा मेंढक किसी सूखती हुई तलैया में भी बोल सकते हैं। पानी लेने के लिए जाने से पहले श्रवण **चन्दन के वृक्ष** के साथ अपनी झोली लटका जाता है। चंदन वृक्ष हमारे लोक-साहित्य में कोमल **भावप्रवणता** का सूचक चिन्ह है। पीछे हम एक सुहाग का उल्लेख कर आए हैं जिसमें किसी ब्याहने-योग्य लड़की को चन्दन के वृक्ष की ओट में गुमसुम खड़ा देख कर उसकी मां पूछती है, कि — "बेटी, **चन्दन** के औह्‌लै-औह्‌लै क्यों खड़ी ?" ऐ बेटी, तूं यहां **चन्दन** की ओट में अकेली क्यों खड़ी है ? लड़की ने उत्तर दिया, मैं अपने बाबल के पास खड़ी थी और उनसे कह रही थी कि ऐ बाबल, मेरे लिए मेरी इच्छा के अनुरूप ऐसा 'वर' ढूंढिये जो सितारों में चांद जैसा हो (इत्यादि)।

यहां, इस प्रसंग की मनोभूमि भी अत्यन्त कोमल है और **'चन्दन'** उसी भावना को पुष्ट करता है। श्रवण के प्रसंग में भी लोक-कवि के मानस में, भावी दुर्घटना की आशंका और करुणा बनी हुई है। रामचरित की इस करुणा-पूर्ण घटना को लोक-कवि ने गहराई से महसूस तो अवश्य किया है, लेकिन व्यक्त किया है अपने ही निजी सरल अनुभवों में बांध कर।

एक अन्य गीत में राम के वन जाने का उल्लेख हुआ है :—

राम ते लछमन जुध्या दे राजे,
हेरी रामा ! मैं हेरी रेही आं ।
राम ते लछमन चले बनबासें,
ठंडिया बनिया, मोर-चकोरें—
हेरी रामा ! में हेरी रेही आं !

(लोकगीत भाग 1)

'जुध्या दे राजे' अर्थात् अयोध्या के राजकुमार । 'और मैं हेर रही (देख रही) हूँ कि दोनों राजकुमार वनवास के लिए जा रहे हैं ।'में देख रही हूँ' से अभिप्राय कल्पना करने से है । और छायादार, घने, ठंडे अरण्य में, मैं जैसे मोरों तथा चकोरों को देख रही हूँ । राम और लक्ष्मण जिन वनों में जाकर रहेंगे वे मोरों-चकोरों से भरे होंगे । राम को वे प्रदेश मनोरम प्रतीत होंगे । गीत में जैसे एक आश्वासन झलकता है । प्रचलित राम-गाथा की जानकारी से ही प्रसूत है यह आश्वासन । लोकमानस जानता है कि राम ने वनवास की अवधि में दानवों का दलन किया था, और अवधि बीत जाने पर वे पुन: अयोध्या में लौट आए थे ।

डोगरा लोक कवि इस सर्वविदित कथा के संकेत भर देना ही काफी समझता है । गीत की सीमित परिधि में घटनाओं के संकेत मात्र ही तो दिए जा सकते थे ।

राम की गाथा में, युवराज-पद पर अभिषिक्त होने के स्थान पर श्री राम का चौदह वर्ष के लिए वनवास प्राप्त करना ऐसा प्रसंग है जिससे लोक-मानस को गहरा आघात पहुंचा है । इस प्रसंग की चर्चा एक डोगरी लोकगीत में बड़े ही परोक्ष रूप से की गई है । डोगरों की यह सामाजिक मर्यादा थी कि वह उस गाँव-नगर में पानी पीना भी अनुचित समझते थे, जहां उनकी कन्या ब्याही गई हो । उसी सामाजिक मर्यादा को लोक कवि ने केकैयी के प्रसंग से जोड़ कर इस गीत में इस तरह व्यक्त किया है :—

लून जे खाइये माता, लून जे पीये,
पीनी नेईं पीना तेरे देस ।
माता ककेइया छल जे कमाया,
राम गी दित्ता बनबास जी ।
राम गी दित्ता बनबास—
राज मिलै ओदे भरथ गी !

अर्थात् — हे माता, हमें चाहे नमक ही क्यों न खाना और पीना पड़े, फिर भी हमें तेरे इस देश में पानी तक पीना गवारा नहीं। क्योंकि तेरे इस देश में रानी केकैयी ने छल-कपट से काम लेकर राम को इसलिए वनवास दे दिया है, ताकि उसके बेटे भरत को अयोध्या का राज मिल जाए।

नमक खाने पर, पानी पीने की बड़ी तीव्र इच्छा होने लगती है। प्यास की उस शिद्दत में भी डोगरा लोक-मानस अयोध्या में इसलिए पानी नहीं पीना चाहता क्योंकि केकैयी ने छल करके राम को वनवास दे दिया है। कितनी सरल है यह रोषपूर्ण प्रतिक्रिया।

एक अन्य गीत में, रावण द्वारा किए गए सीता-हरण की घटना का यह संक्षिप्त विवरण देखिए :

भुर्ज-पत्तर दी बनी जे कुटिया, चन्नन बिंदी लाई ओ !
गढ़ लैंका दा चढ़ेआ रावण, मूंढै झोली पाई ओ !
माता सीतां करै रसोई, बेह्ड़े अलख जगाई ओ !
बद्धी भिच्छेआ लैंदा नेइयों, देआं दस्त बधाई ओ !
दस्तु फगड़ी चुक्की लैंदा, लैंका बिच पुजाई ओ !
माता दमोदरी पुच्छना करदी, कोदी एं भरजाई ओ ?
सिरी रामचंदर दी आं में स्त्री, लछमन दी भरजाई ओ !
एडे जोधे छोड़ै उत्थें, इत्थें कैसी आई ओ ?
रावण तेरा मरी गेआ, रंडेपा देनेई आई ओ !

साधु का कपट वेश बना कर रावण ने सीता की कुटिया पर आकर अलख जगाई। सीता उस समय रसोई (भोजन) बना रही थी। यहां लक्ष्मण-रेखा की कल्पना भी लोक-कवि के मन में रही होगी। तभी तो रावण ने कहा कि वह बंधी भिक्षा नहीं लेगा। 'रेखा' से बाहर पैर रखते ही रावण ने सीता को हाथ से पकड़ कर उठा लिया और लंका में ले आया। सीता को देखकर मंदोदरी ने उससे उसका परिचय पूछा। सीता ने राम तथा लक्ष्मण के विषय में उसे बतलाया तो उसने सौतिया डाह के कारण पूछा कि वैसे योद्धाओं को छोड़ कर तुम यहाँ क्यों आई हो ? तो क्रोधावेश में सीता ने उत्तर दिया कि रावण के मर जाने पर तुम्हें वैधव्य देने आई हूँ।

गीत में सीता का क्रोध तथा उसके मुख से निकले कड़वे बोल डोगरा लोक-मानस की अपनी प्रतिक्रिया व्यंजित करते हैं।

यहां भी अज्ञात लोक-गायक ने गाथा के एस अंश का सार मात्र ही गीत में व्यंजित किया है, उससे जुड़े अन्य कथांशों का उसने संकेत भी नहीं दिया।

एक अन्य गीत में सीता की खोज का हवाला यूं मिलता है :

राम ते लछमन जुध्या दे राजे,
रामै दी सीता चोरिया गेई ऐ !
नेईं, नेईं, जोरिया गेई ऐ ।
हनुमान योधा तुप्पने गी चलेआ,
सीता बचारी ल'बदी नेईं ऐ !

लोक-कवि ने यहां सीता के चुरा लिए जाने की बात को दुहरा कर कहा है। दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त अभिव्यक्ति ''चोरिया गई ऐ'' से जैसे लोक-कवि को सन्तोष नहीं मिला। डोगरी भाषा में इस क्रिया-प्रयोग से यह ध्वनि जो निकल सकती थी कि सीता (स्वयं) चोरी निकल भागी है। इसीलिए उसने तीसरी पंक्ति में स्वयं अपने पहले कथन का जैसे खंडन करके ज़ोर देकर कहा कि उसे तो ज़ोर-ज़बरदस्ती उठा कर ले जाया गया है। सीता-हरण के बाद लोक-कवि ने हनुमान के द्वारा सीता की खोज लगाने की बात कही है।

लोक कवि ने हनुमान के प्रति अपनी पूर्ण आस्था को व्यक्त किया है, उसे **योद्धा हनुमान** कह कर।

एक अन्य गीत में जहां एक ओर लंका में बंदिनी सीता की मनोवेदना का संकेत दिया गया है, वहां दूसरी ओर, अशोक वाटिका में हनुमान के द्वारा सीता के सम्मुख, राम की अंगुठी गिराए जाने का हवाला भी दिया गया है।

चढ़दे चेतर धुप्प भखी ऐ,
सीतां मनै बिच रैंह्दी चुप्प ।
कुसगी दस्सां अपना दुक्ख ?
अक्खीं दिक्खियै मुंदरी डरी ऐ—
ए ते मुंदरी मेरे राम दी !

एक अन्य गीत में लोक-कवि ने लंकेश की पटरानी मंदोदरी के द्वारा रावण को समझाने का प्रयास किया है। यह बात सर्वविदित है रावण पढ़ा-लिखा विद्वान् था, उसी तथ्य के प्रकाश में मंदोदरी रावण को, अपने रावण को, 'पंत' (अर्थात् पंडित) कह कर सम्बोधित करती है। लोक-कवि पेचीदा तर्क करने की कला नहीं जानता। वह बात को सीधे सरल ढंग से कह देता है। जैसे :

मेरेआ रावणा पंता ! सीतां नार बगान्नी ऐ,
मेरेआ रावणा पंता ! सीतां गी लैंक टपाई दे जी !
मेरेआ रावणा पंता ! सीतां काल-नशान्नी ऐ ।।

गीत की पहली तथा दूसरी पंक्ति में मंदोदरी के मुख से एक सरल सामाजिक मर्यादा की बात कहलाई गई है कि सीता किसी दूसरे पुरुष की

विवाहिता पत्नी है, इसलिए उसे लंका की सीमा के बाहर (उसके पति के पास) भेज दो। लेकिन अन्तिम पंक्ति में मंदोदरी के मन की वह गहरी आशंका व्यक्त हुई है जिसमें सीता को अपने राज्य, अपने परिवार और अपने सुहाग के लिए विनाश की निशानी समझती है। एक अन्य गीत में भी, यही बात कही गई है लेकिन उसमें मंदोदरी का मानसिक क्षोभ अधिक तीव्र होकर व्यक्त हुआ है :—

करदा लड़ने दा सम्यान
मजती ऐ सिरी भगवान
ते खंडा हत्थ दा।
तुकी पुच्छै मंदोदरी माई
कुसै दी लेई आया नार पराई
तेरा काल गेदा ई आई।
ते आए दिन मरने दे।

अर्थात् रावण लड़ने की त्यारी करने लगा है। उसे अपने हाथ के खांडे का तो भरोसा है ही, लेकिन उसे यह भी विश्वास है कि उसके भगवान् भी उसके सहायक हैं। महारानी मंदोदरी रावण की भर्त्सना करती है कि तूने पराई नारी का अपहरण किया है तो जान ले कि तूने यमराज को बुलावा दिया है। यह समझो कि तुम्हारी मृत्यु के दिन पास आ गए हैं!

एक गीत में, युद्ध के लिए राम की सेना के कूच करने का संकेत मिलता है।

चढ़ेआ म्हीना माह् बसाख,
ते सिरी रामचन्दें
आख जिंदे ! बिच्च जुआड़ी बास,
इत्थुआं कैं पुट्टी लेआ बास ?
कूच न लैंका दे।
फर-फर खंडे, साह्ब दुहाई
दर्सन पाया, जोत सुआई,
छड़ा हनुमान नेईं गमान !
ते करदे लड़ने दा सम्यान ॥

अर्थात्—वैसाख का महीना शुरू हो गया है। अरे मेरे प्रिय साजन (अथवा बन्धु)! इस वन में राम बसेरा कर रहे थे, अब उन्होंने अपना डेरा वहां से उठा क्यों लिया है? उत्तर मिला—अरे, श्री राम तो लंका पर चढ़ाई करने निकल गए हैं। उनके सैनिकों के खांडे उनके हाथों में लहरा रहे थे। दूसरी ओर (शत्रु-दल में) अपने साहिब (अर्थात् स्वामी रावण) की दुहाई मच गई है। राम

के सैनिक अपने प्रभु के दर्शन पा रहे हैं, उनके अलौकिक रूप की हर क्षण बढ़ती हुई ज्योति को निहार रहे हैं। राम के सैन्य-दल का एक सैनिक हनुमान ही शत्रु पर भारी है। युद्ध की त्यारी होने लगी है।

एक अन्य भक्ति-गीत में लंका के समर में राम के विजयी होने का संकेत मिलता है।

दुर्गा दाती सिमरिये, बर-दाती माई;
छत्री, ब्रैह्मण सिमरदे, पूजा-पाठ कराई,
सिरी राम माता गी सिमरदे, लछमन दे भाई,
हनुमान बी सिमरदा,
लैंका फते कराई।

इस भक्ति-पद में, मूल रूप में दुर्गा भगवती की महिमा का बखान किया गया है। श्री राम को लंका में विजय दिलाने का श्रेय भी दुर्गा को ही दिया गया है।

और अन्त में, विजयी राम के अयोध्या में लौट आने के मांगलिक अवसर का उल्लेख करने वाला यह गीत प्रस्तुत है :—

मिली लै भरथ, सिया राम आए,
उट्ठ मिली लै !
राम बी आए, लछमण बी आए
हनुमान आए, उप्पर चौर करी के......
उट्ठ मिली लै !
ब्रह्मा बी आए, विष्णु बी आए,
सदा शिव आए, उप्पर बैल चढ़ी के......
उट्ठ मिली लै !
बैठ पसारै, मिले चारै भाई,
नैनें दा नीर आवै ढली के......
उट्ठ मिली लै ?

वनवासी राम के लौट आने से अयोध्या, देवों के लिए भी बंदनीय हो उठी है। लोक-कवि अपनी कल्पना के दर्पण में देख रहा है कि एक-दूसरे से बिछुड़े चारों भाई **"पसारे"** (कच्चे बरामदे) में ही एक-दूसरे से मिल कर विभोर हो रहे हैं। चारों की आंखों से आँसू झर रहे हैं।



कश्मीरी लोक-गीतों में लोक-संस्कृति का चित्रण

☐ सत्यभामा

लोकगीत मानव हृदय की वह नैसर्गिक अभिव्यक्ति है जिस में मानव समाज की प्रतिपल घटित एवं परिवर्तित गतिविधियां अपने उल्लास एवं विषादात्मक अस्तित्व के साथ सन्निहित रहती हैं। हृदय में उत्पन्न होने वाले राग-विराग के सीधे-सच्चे भावों का सीधा और निश्छल प्रकटीकरण लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता है। दूसरे शब्दों में हृदय की सहज स्वाभाविक भावानुभूति रूपी मोतियों से ही लोकगीतों रूपी माला की लड़ियां अलंकृत की जाती हैं। वस्तुतः लोक संस्कृति की प्रत्येक वास्तविक झांकी लोकगीतों में झलकती है। इन गीतों में मानव संस्कृति के उन चित्रों का अवलोकन रहता जो साधारणतया लिखित साहित्य में उपलब्ध नहीं होते हैं। अतः लोक संस्कृति की यथार्थ एवं सहज अभिव्यक्ति होने के फलस्वरूप ही ये गीत समाज के दर्पण कहलाते हैं।

कश्मीरी लोकगीतों में यहां की लोक संस्कृति का सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण हुआ है। यहां के लोक कवि ने समाज में जिस समता या विषमता का अनुभव किया उसका उसी रूप में चित्रांकन भी किया है। यहां के लोकगीतों में जहां एक ओर आदर्श पतिव्रता नारियों का उल्लेख मिलता है तो वहीं दूसरी ओर समाज में रहने वाली उन कुटिला एवं कर्कशा स्त्रियों की ओर भी संकेत पाया जाता है जो घर में कामधेनु होने पर भी पति को छाछ के लिये तरसाती हैं। पारिवारिक सम्बन्धों में जहां एक ओर माता और पुत्री के दिव्य प्रेम का वर्णन मिलता है तो दूसरी ओर सास और बहू के कटु एवं विषाक्त वर्णन की भी कमी नहीं है। ऋतु एवं त्योहारों के गीतों में कहीं प्रकृति की अनुपम छटा का वर्णन है तो कहीं देवी-देवताओं की आराधना के साथ-साथ दार्शनिक विचारों की अभिव्यञ्जना भी हुई है। इतना ही नहीं, कश्मीरी लोकगीतों में साधारण जनता के आर्थिक पक्ष का चित्रांकन भी उपलब्ध होता है। कहने

का भाव यह है कि कश्मीरी लोकगीतों में सामान्य जनता की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के सुन्दर तथा असुन्दर, दोनों पक्षों का रमणीय चित्र उपलब्ध होता है ।

सामाजिक जीवन का चित्रण

(क) पारिवारिक सम्बन्धों का स्पष्टीकरण :

लोकगीत समाज की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है । परिवार समाज की आधारशिला होने के परिणामस्वरूप लोकगीतों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में पारिवारिक सम्बन्धों एवं स्थितियों की अभिव्यक्ति स्वत: सिद्ध है । कश्मीरी परिवार संयुक्त परिवार का आदर्श उदाहरण है जहां पिता-पुत्र, माता-पुत्री, पति-पत्नी, सास-वधु, ननद-भाभी, भाभी-देवर आदि सभी आनन्द-पूर्वक एक साथ निवास करते हैं । कश्मीरी लोक-गीतों में इन पारिवारिक सम्बन्धों के विविध पक्षों के आदर्श एवं यथार्थ रूपों को उभारा गया है । लोक गीतों में अंकित इन सम्बन्धों में प्राय: ननद-भाभी का सम्बन्ध अत्यन्त रोचक एवं वर्णनीय है । यों तो प्राय: अन्य सभी भारतीय लोक गीतों में ननद-भाभी का सम्बन्ध सास-वधू के सम्बन्ध की अपेक्षा कुछ कम विषाक्त नहीं दिखाई पड़ता । किन्तु कश्मीर परिवार में ननद-भाभी सम्बन्ध के दो रूप उपलब्ध होते हैं । एक रूप जिसमें ननद भाभी के लिये, अन्य भारतीय परिवारों के समान ही, कष्टदात्री सिद्ध हुई हैं एवं च अपर रूप में ननद भाभी की सहचरी के रूप में उभर आई है । उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

हशि वोन नोॅशि कुन ओश मय त्राव,
कति छुय अतगण कांगर ते स्राव ।

हावात छख मालिन्युक चिकु चाव,

हशि वोन नोॅशि कुन ओश मय त्राव।
ज़ाम वोननस कमिकुय सुतु छुय,

हाकु मेचि हुन्दि पाठ्य चीरथय ।

तूरि गछ् माल्युन छख चु गूरिबाय,

हुशि वोन नो॑शि कुन ओश मय त्राव ।

गीत की इन पंक्तियों में सास वधू पर दहेज के लिये असहनीय प्रहार करते हुये कहती है, "वधू ! तुम जो हर पल अपने मायके की बढ़ाई करती रहती हो, कहां है शगुन, कांगड़ी और खड़ाऊं[1] ?" इस पर नवोढ़ा चुप तो रहती है किन्तु उसके नेत्रों से अश्रु धारायें टपकनें लगती हैं । इस पर ननद अपनी भाभी को सान्त्वना देने की अपेक्षा उसे दुत्कारते हुये कहती है कि तुम तो निरी बेवकूफ हो, भलाई इसी में है कि तुम ससुराल छोड़कर मायके वापिस चली जाओ ।

ननद के इस विषाक्त रूप के अतिरिक्त कश्मीरी लोकगीतों में ननद के एक अन्य रूप की ओर भी संकेत मिलता है ; यथा :—

ज़ाम शेरन जाय म्याञ्ञ बा सरूर,

हुकु सान में दकु लायान बेकसूर ।

साव हास मन्ज़ कुठिस हान्कल करिथ,

चलि मे सारी यार तु बाय फन्द करिथ ।

अनिगटि छम तति मच़रान मालिन्यो,

जान वन्दयो जान-जानानु मालिन्यो ।

---

1. कश्मीरी पण्डितों में शिवरात्री अनुष्ठान पर फाल्गुण कृष्ण पक्ष दशमी को विवाहित कन्याओं को उपहार के रूप में कांगड़ी, खड़ांऊ, नमक, नान तथा शगुन के रूप में पैसे (अतुगव) देने की प्रथा है ।

इस गीत में नवविवाहिता को एक ओर से अपने मायके से अलग होने का कष्ट पीड़ित कर रहा है तो दूसरी ओर पति का अपरिचित व्यक्तित्व एवं ननद का हास्य-परिहास उसे एक विचित्र स्थिति में धकेल देता है। ननद बड़ी लगन के साथ अपनी भाभी की शय्या एवं शयनकक्ष को पुष्पों एव सुगन्धित पदार्थों से अलंकृत एवं सुवासित करती है एवं च अपनी भाभी को उसके शयनकक्ष के भीतर धकेल कर स्वयं हंसती हुई वहां से चल देती है। अतः स्पष्ट है कि इस गीत में ननद भाभी की सहचरी के रूप में उभर आई है।

कश्मीरी लोक गीतों में जहां एक ओर सास और ननद के निष्ठुर स्वभाव को उभारा गया है तो दूसरी ओर आलसी और तीक्ष्ण स्वभाव वाली का चित्रण भी निखर आया है। वधू के आलसीपन एवं तीक्ष्ण स्वभाव से तंग आकर सास साक्रोष वधू से पूछती है कि प्रातःकाल से लेकर अपने घर के कामकाज को पूरा क्यों नहीं किया तो इस पर आलसी वधू उत्तर देती है :—

गजि सूर कोडुम, पजि सूर लोदुम त त्रो वुम गयम त्रे कामि।

लालु वुज़ु नो वुम, दोॅदु दाम चोवुम तु सोवुम कुल गायम शेॅ कामि ॥

अर्थात् चूल्हे की राख झाड़ दी, उसे टोकरे में भर दिया और फिर बाहर फेंक आई—ये हुये तीन काम; बालक को जगाया, उसे दूध पिलाया और फिर सुलाया—ये हुये तीन काम। इस तरह से कुल मिलाकर छः काम किये।

कश्मीरी लोक गीतों में जहां सास और वधू अथवा ननद और भाभी के विषाक्त सम्बन्ध का वर्णन हुआ है वहां माता-पुत्री, भाई-बहन तथा पति-पत्नी के आदर्श एवं लोकोत्तर प्रेम की अभिव्यञ्जना भी हुई है। यद्यपि माता का स्नेह पुत्र के प्रति असीम होता है तथापि पुत्री भी उसे कुछ कम प्यारी नहीं है। कश्मीरी लोकगीतों में माता का पुत्री के प्रति भी असीम प्रेम दिखाई पड़ता है। पुत्री के लालन-पालन तथा उसके विवाह में कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े। पर माता का ममता से परिपूर्ण हृदय उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता है। विवाह और विशेष रूप से विदाई के गीतों में माता के वात्सल्य, स्नेह एवं त्याग की करुण अभिव्यञ्जना हुई है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों को लिया जा सकता है :—

सोॅनु सुन्ज़ि तारुचि मोॅखतु वुर उन्जिनुय,

चानि ज्यनु लन्जिनु फोलिमय पाश ।

चेनि कूरि दिच्मय शेथिनुह नाजे,

फेरि कूरि वाजे अथु वास करिथ ।

यिछ़ कूरि रछि रवय पनु ने माजे,

त्यूथ नय हे किय कांह ति रछिथ ।

छ्येनि दितिमय खण्डु खाल्य चेञ्जि दोँदु पाजे…

गीत की इन पंक्तियों का भाव यह है कि अपनी माता ने जिस लाड़-प्यार से अपनी पुत्री का लालन-पालन किया, वैसा कोई नहीं कर सकता है। अपनी माता ने उसे अपनी छत्तीस नाड़ियों का दूध पीने को दिया तथा मिष्ठान्न खाने को दिया ऐसा उसकी पुत्री के लिये और कौन कर सकता है। पुनश्च :—

स्वनु सन्जि गंग जे रोँवु सन्ज ही छय,

दयु सन्ज द्रयु छय वारु रछिज्यन ।

पोम्पु रुच कोन्गु मोन्ड़ तथ को तछि जे,

कूर नो रछि जे लूकु हुन्द माल ।

सानि कनि शारिका, तू हुन्दि कनि व्यतस्ता,

य हय गर च्यतस थवि जे।

अपनी आत्मजा के लिये सुखी एवं सुसम्पन्न विवाहित जीवन की कामना करना मातृत्व का विशेष आदर्श है। अतः आत्मजा अपने ससुराल की ओर विदा हो रही है, माता के लिये उसकी विदाई का दुःख असहनीय हो जाता है। उसके हृदय में अपनी आत्मजा के सुखी और शान्त जीवन की कामना तीव्रतर और तीव्रतम होती जा रही है। वह कुंकुम-सी कोमल अपनी पुत्री के प्रति सुव्यवहार एवं च उसके उपयुक्त पालन-पोषण के लिये वरपक्ष वालों से इष्ट देवी को साक्षी रखकर प्रार्थना करते हुये कहती है कि उसकी बेटी के साथ दुर्व्यवहार करना अनर्थ होगा।

कश्मीरी लोक गीतों में पति-पत्नी के आदर्श प्रेम की झांकी भी झलकती है। बहुपत्नी प्रथा की पग-पग पर निन्दा की गई है। कश्मीरी परिवार में पहली पत्नी को प्रणय की देवी कहा गया है, दूसरी पत्नी अनावश्यक किन्तु फिर भी सहनीय और तीसरी पत्नी को सिर पर खड़ी कुल्हाड़ी के समान कहा गया है गीत की पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

गोडनिच कोलम छय रूनि माशूख,

दोयम कोलय छय तोति केन्छाह,

त्रेयिम कोलय छय तालि मकुचाह।

यहां पर यह बात वर्णनीय है कि कश्मीरी लोक गीतों में बहुपत्नी प्रथा को नैतिकता से अंकित किया गया है वह तो प्रशंसनीय है ही किन्तु यह बात भी ध्यातव्य है कि कश्मीर में बहुपत्नी प्रथा का अधिक प्रचलन रहा है। इस बात का संकेत निम्नलिखित पंक्ति से मिलता है :—

त्रेयिम कोलय चटान सुम तु क दल,

चूरिमि बदलु लगि नु कांह।

अर्थात् तीसरी पत्नी वज्रपात के समान है ; चौथी पत्नी तो सीमाओं का अतिक्रमण है।

किन्तु वर्तमान युग में कश्मीर में पुर्नविवाह की प्रथा का उत्थान नहीं हो पाया है ।

(ख) समाज में नारी का स्थान :—

कश्मीरी लीक गीतों में नारी जीवन के विविध पक्षों का सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण हुआ है । परिवार में नारी को माता, सास, बहू, ननद, बहन, भाभी तथा पुत्री आदि रूपों में दर्शाने के साथ-साथ सामाजिक परिवेश में भी उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व की सूक्ष्म एवं आदर्श अभिव्यञ्जना हुई है। कश्मीरी लोकगीतों में नारी जीवन के दो पक्षों की ओर संकेत मिलता है; एक मायका एवं अपर सुसराल । प्रथम पक्ष में जहां नारी पुत्री के रूप में अपने माता-पिता की ममता एवं वात्सलय तथा बहन के रूप में भाई-बहनों के अपूर्व स्नेह को प्राप्त करती है तो द्वितीय पक्ष में वह पत्नी के रूप में पति के प्रेम को प्राप्त करने के साथ-साथ बहू तथा भाभी के रूप में अपनी सास-ससुर तथा ननद और देवर के सुव्यवहार और दुर्व्यवहार को सहती हुई अपने जीवन को अभिशाप की छाया में भी व्यतीत करती है । कश्मीरी लोकगीतों में नारी जीवन के इन दोनों पक्षों को अत्यन्त कलात्मकता से उभारा गया है ; यथा :—

यारु दादे यच़ दो वुम, तापय दो दुम ताल्युन वेसी ।

हारु मासय लारु आयस, कोत लजिस शाल्युन वेसी ।

सुलि वलि गरि द्रायस, लसुजनु दोह मे लूसुम ।

शाह त यि सामान आसिथ, छतुह करन स व्यथु बलि ।

नाह कय वार्युव बु आयस गाम कोत माल्युन वेसी ।

पोञ आसिथ यख बने यस[1], जम्बु वारिक छम्बु बु ।

---

1. पानी होकर हिम बन जाना' इस गीत में ससुराल के दुर्व्यवहार से पीड़ित होने का द्योतक है ।

। । । । ।

यख खानस कर पेयम वोन्य, ताप रेत काल्युक वेसी ।

यह गीत एक नदी के प्रतीक पर आधारित है जो आषाढ़ मास की कड़कती धूप में अपने प्रियतम की खोज में निरन्तर प्रवाहमान रहती है। शाल्थुन, लार, लसजन आदि जैसे दुर्गम स्थानों से प्रवाहित होती हुई वह छत्तावल[1] जैसे दुरूह स्थान का शीतल व्यवहार भी देखती है। पानी होकर भी यहां वह हिम बन जाती है और तब उसे स्रोत[2] की याद सताती है।

कश्मीरी लोकगीतों में नारी के आदर्श सतीत्व की अभिव्यक्ति यत्र-तत्र हुई है। यहां की नारी की चारित्रिक महानता, आत्म समर्पण तथा पति के प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार हमेशा से एक आदर्श रहा है जिसे यहां के लोककवि ने बड़े ही कलात्मक सौष्ठव से अपने गीतों में उतारा है। वह पतिव्रता नारी का अनादर करने वाले पति के लिये भी अहित की कामना नहीं करता है। कारण यह है कि वह दया और क्षमा की साक्षात् मूर्ति (नारी) को वैधव्य के कष्ट से पीड़ित नहीं देखना चाहता। इसके विपरीत वह पत्नी को ठुकराने वाले पति के लिये भी दीर्घायु की कामना करता है तथा उसकी ठुकरायी पत्नी के लिये एक सुयोग्य पुत्र की कामना करता है; यथा :—

।
यु‌स बरथा बोज़ि बारिमायि ज़ाए,
तस बरथाहस दोॅछ़ि-दोॅछ़ि आय,
।
खसुन दियस नीलगुर वलुन जोरि शाला,
ज़ाला ज़गि रछि पादन तल।
। ।
युस नु बरथा बोज़ि बारियायि ज़ारा,
तस बरथा हस ति दोॅछ़ि-दोछ़ि आय,
तस त्रियि आसुन गछ़ि उम्बिनुय लाला,
ज़ाला ज़गि रछि पादन तल।

1. ससुराल का प्रतीक जहां नारी को सुव्यवहार एवं दुर्व्यवहार, दोनों देखने एवं सहने पड़ते हैं।

2. अर्थात मायका

कश्मीरी लोकगीतों में आदर्श पतिव्रता नारियों का उल्लेख मिलने के साथ-साथ कश्मीरी परिवार एवं समाज में रहने वाली उन कुटिल एवं कर्कशा स्त्रियों की ओर भी संकेत मिलता है जो घर में कामधेनु होने पर भी पति को छाछ के लिये तरसायेंगी, बात-बात पर घर के बर्तनों को पति के सीने पर फेंक कर चकनाचूर कर देंगी, स्वयं अच्छी तरह भोजन करके अपने पति से खाली हांडियां चटवायेंगी, और फिर यह प्रमाणित करेंगी कि यथार्थ में गृहस्थ रूपी गाड़ी को चलाना क्या होता है। गीत द्रष्टव्य है :—

सुलि-वुलि गाव पान्छ़ ज़ांह ति नो चावय,
वुम्बरि थवय गुर सु तमन्नाह।

कथि वालिन्जि प्यठ बानु फुटरावय,
हावय गरु करुन क्याह गव।

समिथ ख्यथ च्यथ चे तोर्हांपगु थावय,
लेजि परापावय माऽय मशरावय,
हावय गरु करुन क्याह गव।

कश्मीरी परिवार एवं समाज में विधवा की दशा अत्यन्त दयनीय है। वैधव्य की पीड़ा को सहने के अतिरिक्त उसे अपने रिश्ते-नाते के लोगों, यहां तक कि अपनी भाभी के ताने भी सहने पड़ते हैं और इसे वह अपना दुर्भाग्य ही मानती हैं। उदाहरण के लिये गीत प्रस्तुत है :—

वुछतु वेसि कांहन्दि बु जायस,
बागुन आयस कांहन्देताम्।

। । । । ।

दोह् आकि माल्य-माजि न गु र हरशायेस,

। । । । ।

शाहरुच आसस त वाचुस गाम

। । ।

सति दोहिय फीरिथ आयस-वागञ आयस कान्हदेताम ।

। ।

दोह अकि श्रेहसान माल्युन ब आयेस,

। ।

उ`कु बजि काकनि दिचनम पाम ।

। । । । । ।

उ`कु रोछ ज्यवबुन कोनु मो` येयस-वागुञ आयस कान्हन्देताम ।

(ग) सामाजिक कुप्रथाओं की अभिव्यञ्जना :

वर्तमान कश्मीरी समाज में कई कुप्रथाओं ने जन्म ले लिया है और ये कुप्रथायें दिन-प्रतिदिन कम होने की अपेक्षा विस्तार ही पा रही हैं । इन कुप्रथाओं में दहेज जैसी कुप्रथा उल्लेखनीय हैं । यह कुप्रथा आधुनिक कश्मीरी हिन्दू समाज में इतना महत्त्व रखती है कि वधू के गुणों एवं सुशीलता, उसकी विद्वता आदि पर तो जैसे वर पक्ष वालों का ध्यान ही नहीं जाता, अपितु उनका ध्यान केवल दहेज के तोल मोल पर ही केन्द्रित रहता है । कश्मीरी लोक साहित्य में ऐसे कई गीत देखने को मिलते हैं जो दहेज जैसी कुप्रथा पर प्रकाश डालते हैं । उदाहरण के लिये एक गीत की ये दो पंक्तियां प्रस्तुत की जा रही हैं :—

। ।

वोनथम थ्योकथम सो`जहरि सो`न छुम,

। ।

अज हारि कनवाज्य द्रायियनो ।

। ।

वोनथम व्योकथम मालिनि क्रोनुय,

।

अजनय डूजि चो`चि कुनि द्रायय ।

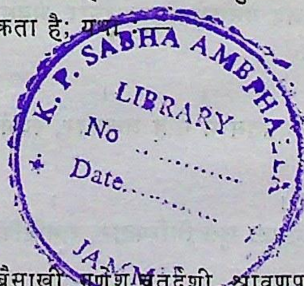
अर्थात् अपनी चाहत के अनुकूल दहेज न पाकर सास वधू से पूछती है कि "यदि तुम्हें अपने मायके वालों पर इतना ही गर्व था आज उन्होंने तुम्हें 'कर्णवल्लिका' जैसा साधारण-सा कर्णाभूषण और अखरोट एवं नान जैसी साधारण (सगन में दी जाने वाली) वस्तुएं क्यों नहीं दी।"

धार्मिक जीवन की झलक

कश्मीरी लोक गीतों में सामान्य जनता की धार्मिक परिस्थिति का चित्रांकन भी हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वर्तमान युग में कश्मीरी परिवार एवं समाज में नई सभ्यता एवं शिक्षा के परिणामस्वरूप यहां की प्राचीन धारणाओं एवं विश्वासों में कुछ परिवर्तन हुआ है तथापि जहां की जनता आज भी उसी प्रकार विविध त्योहारों एवं पर्वों का अनुष्ठान करती है एवं च अपनी अभीष्ट भावनाओं की पूर्ति के लिए इष्ट देव की आराधना उसी प्रकार करती है जिस प्रकार प्राचीनकाल में की जाती थी। यहां के लोकगीतों में जिन पर्वों एवं त्योहारों की ओर संकेत मिलता है उनमें हेरथ, नवरेह, वैशाखी, गनचौँदाह, श्रावनु पुन्यम, जरमु सतम, जेठुआठम, हारुआठम, कावपुन्यम[1] आदि उल्लेखनीय हैं। इन में शिवरात्रि (हेरथ) का पर्व हर्षोल्लास का अवसर होता है। यह फाल्गुण कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को मनाया जाता है तथा इस पावन अवसर पर कश्मीरी पण्डित घड़े में अखरोट डाल कर उसे शिव-शक्ति का प्रतीक मानकर शास्त्रीय विधि विधान के अनुसार पूजा करते हैं। शिव रात्रि के पावन पर्व से सम्बन्धित कश्मीरी लोकगीतों में जहां एक ओर भगवान शिव की आराधना की गई तो दूसरी ओर इन गीतों में दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति भी हुई है। शिव निराकार है जिसके साथ आत्म-साक्षात्कार करने के लिये सांसारिक बन्धनों से दूर रह कर 'शरीर पर भस्म का लेप लगा कर, हाथ में कमण्डलु धारण कर योग एवं साधना के द्वारा ही सम्भव हो सकता है; यथा

बरबुक आयस सोँरगुचहूर,

शिव जी मो ह्यम दूर।



---

1. शिवरात्रि, नववर्षारम्भोत्सव, बैसाखी, गणेश चतुर्दशी, श्रावणपूर्णिमा, जन्माष्टमी, जेष्ठाष्टमी, आषाढ़ाष्टमी, कात्र पूर्णिमा अथवा माघपूर्णिमा।

गाफिल पानस काफिल दूर,

शिवजी सुय गोम सूर ।

जर न त कर क्याह मलना सूर,

सारिवय छान्ज्यो कान्सिनो पूर ।

शिव जी मोह्यम दूर ॥

कुनिरस ताहन्दिस अन्द तु लोन नो

युसगव मनु किअ त भी लोब सु नूर ।

शिव जी मो ह्यम दूर ॥

गणेश चतुर्दशी अथवा गनचोदाह का व्रत वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को रखा जाता है । इस अवसर पर गणेश पूजा सम्पन्न होती है । इस पर्व से सम्बन्धित गीत भी धर्मभावना से ओत प्रोत हैं । गणेश आदि देव एवं सर्वशक्तिमान है जिस के भजन एवं कीर्तन से मायाजाल से मुक्त होकर मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है । उदाहरण द्रष्टव्य है :—

जय गमीशा बोजुजारपार. भवसर तार लो लो ।

कासतम मे मोह जन्दकार, स्वर्गस मे खार लो लो ।

गोमुत छुस गिरिफ्तार, समयिकि जालु लो लो ।

छुयना चे केन्हति म्योनआर, कांसिहुन्द छायि समसार ।

छुय यि तावनुन बाजार सारुय छुव्रम त वाज़िगार ।......

जेष्टाष्टमी (ज़ेठेओठम) तथा आषाढ़ाष्टमी (हारेओठम) के पर्व क्रमशः जेष्ठ शुक्ला अष्टमी तथा आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को मनाये जाते हैं। इस अवसर पर लोग व्रत रखते हैं तथा स्नान करने के लिये क्षीर भवानी के तीर्थस्थान चले जाते हैं। यों तो कश्मीरी पण्डित प्रति शुक्ला अष्टमी को व्रत रखते हैं और राज्ञन्या देवी[1] की उपासना करते हैं। भक्तजन आराध्य देवी के लिये क्षीर के पात्र भर देता है, उसके चरणकमलों को अपनी अश्रुधाराओं से धोता है, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य शरीर पर मलता है, कुंकुम आदि पुष्प अर्पित करता है तथा भक्तिभावना से, देवी का स्तुतिगान करता है; यथा :—

दोँदुहर की प्यालु बरयय, साल करयय दीवी।

अशि वानि सूत्य पाद छलयय, नाद बाजतय स्यानी।

व्रथ चोंनुय नेथ ब दरयय, साल करयय दीवी।

कोन्ग कोफुर तनि मलयय, जाग वलयय ज़रकारी।

बरवति बावक शोलूख परयय, साल करयय दीवी।

आषाढ़ चतुर्दशी (हार, चोँदाह) का पर्व आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को

1. राज्ञन्या देवी शक्ति का ही एक रूप है।

मनाया जाता है। इस अवसर पर लोग रिव्रव में स्थित ज्वालामुखी देवी[1] के मन्दिर में जाकर पूजा करते हैं और बलि चढ़ाते हैं। ज्वालामुखी देवी भी शक्ति का ही रूप है; यथा :—

रिव्रव खस पोशिपूजा कर ज़ालाये,
महामालाये जय जयकार।

विष्णुभायाये, सर्वस्यदाये, महालख्यमी शिवप्रियाये
महा विद्याये जगथमाताये, महामालाये जयजयकार

श्रावणपूर्णिमा अथवा श्रावनपुन्यम का पर्व भी भगवान शिव से सम्बन्धित होने के कारण इस दिन भगवान शिव की पूजा की जाती है। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध अमरनाथ गुफा की यात्रा भी की जाती है। इसके अतिरिक्त 'हरीश्वर', 'सरीश्वर' 'महादेव' तथा तीर्थ स्थानों एवं शंकराचार्य पहाड़ी पर स्थित शिव-मन्दिर में भी लोग बड़ी संख्या में शिवलिंग के दर्शनार्थ एवं पूजा के लिये जाते हैं। घरों में भी लोग मिट्टी का शिवलिंग बनाकर पार्थीश्वर की पूजा करते हैं।

जन्माष्टमी अथवा ज़रमसतम का पर्व भगवान् कृष्ण के जन्मदिन से सम्बन्धित है। इस अवसर पर व्रत रखा जाता है तथा शाम को चन्द्रोदय होने पर भगवान कृष्ण की मूर्ति का पूजन किया जाता है। इस अवसर से सम्बन्धित कश्मीरी लोकगीत प्रायः भगवान कृष्ण के दिव्य तथा लोक रक्षक स्वरूपों पर प्रकाश डालते हैं; यथा :—

गाशआव लालो, वलो नन्दलालो
अनिव्रट चज्य फोज्य संगरभालो,

---

1. Har-chodah, the last day of the waxing moon of the Har in the special day of "Jalamukhi". This temple is at 'Khrer'.

The Valley of Kashmir
by Henry Frowade University Press.
London. Page 265.

हरु गूपालो दर्शुन मे हाव ।

श्री कृष्ण स्मरण करव प्रथ कालो,

भवसरु तारान छुय कृष्णु नाव ।

आकाश पृथ्वी वेयि पातालो,

प्रकाश चोनुय हा गाशु लालो,

हरु गूपालो दर्शुन मे हाव ।

इन गीतों के अतिरिक्त कश्मीरी लोक साहित्य में ऐसे अनेकों लोकगीत विद्यमान हैं जिनके अध्ययन से यहां के लोगों के धार्मिक विचारों का पता चलता है। कश्मीर वासियों का जीवन धर्ममय है। इस विषय में यदि कहा जाये कि कश्मीर की संस्कृति धर्म के ताने-वाने से बुनी गई है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। यहां के लोकगीतों में जिन प्रधान देवी-देवतओं की पूजा का उल्लेख मिलता है उनमें आदि देव गणेश, आशुतोष भगवान शंकर तथा शक्तिस्वरूप भगवती राज्ञन्या, दुर्गा, जाला तथा शारिका अधिक लोकप्रिय हैं।

आर्थिक पक्ष का चित्रण

कश्मीरी लोक गीतों में कश्मीरी परिवार एवं समाज के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के चित्रण के साथ ही आर्थिक परिस्थितियों की झांकी भी उपलब्ध होती है। इन गीतों में यहां की सामान्य जनता की आर्थिक परिस्थिति के विलास-वैभव तथा दैन्य-दीनता, इन दोनों पक्षों का वर्णन मिलता है । विवाह तथा पालने के गीतों में जहां मोतियों जड़ी चन्दन का लकड़ी तथा स्वर्ण निर्मित कंघी एव चांदी की डोरियों से युक्त स्वर्ण निर्मित पालने तथा मखमल की चादर का वर्णन है वहां ऐसे किसान की ओर भी संकेत मिलता है जो लगान देने में असमर्थ है तथा आजीवन ऋण के नीचे दबा रहता है । उस पर भी उसे गांव के नम्बरदार और कारिन्दों के अत्याचार निरन्तर सहने पड़ते हैं। कश्मीरी लोक कवि ने आर्थिक परिस्थिति के इन दोनों पक्षों का सूक्ष्म और यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है; यथा—

बाज़ुरु अनियम चन्दन हट पानय, तथि गरनावगय कंगने हन ।

वासदीव राज़नि छानय वानय, कूर छख पनने माजे हुन्ज़ ।

रोखमनि अनिनय गहिथिति पानय, मोॅखतय दानय वुरासय ।

कंगनि चानि छि स्वनु सुन्दि बरिये, हारी वोतुय व्यवहाकार ।

पुनश्च

छुनथाह रोॅजि मन्ज़लिस तु करयाह गूर गुर,

शान्द दिमयाह शान्द गोन्ड़ तु मखमलच वूर ।

इसी प्रकार

नम्बरदार कामाह छु गामुत तैयार,

छु जन नसल शैतान बद राज़गार।

करान रोब किसानस प्यठ बकाब,

अदावत करान, तस प्यठ बेशुमार,

करान पालसी तस प्यठ हरकिनार,

नम्बरदार कामाह छु गामुत तैयार ।

गीत की इन पंक्तियों में कश्मीरी किसान का जीवन सचमुच बड़ा सीधा और सरल तथा गांव के नम्बरदारों के भ्रष्टाचारों से आतंकित दिखाई पड़ता है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कश्मीरी लोक गीत उस स्वच्छ एवं निर्मल दर्पण के तुल्य हैं जिनमें कश्मीर की लोक संस्कृति का अकृत्रिम प्रतिबिम्ब उपलब्ध होता है । इन गीतों में जिस समाज की ओर संकेत किया गया है वह सदाचारी और धर्मपरायण है, जिस धर्म का चित्रण किया गया है वह सम्पूर्ण विश्व में शान्ति तथा प्रेम का उपदेश देता है तथा जिस आर्थिक संगठन का चित्रण हुआ है वह मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है । □

डोगरी कहावतें और क्षेत्रीय जन-जीवन

☐ देशबन्धु डोगरा नूतन

हर भाषा की समृद्धता उस भाषा में विद्यमान सुन्दर शब्दों, कहावतों तथा मुहावरों द्वारा प्रकट होती है। डोगरी भाषा हिन्दोस्तानी भाषाओं में अपनी सुन्दर शब्दावली तथा पुरातनता में अधिक समृद्ध लगती है। आर्यों के आगमन के पूर्व ही यह भाषा समृद्ध हो चली थी और इसकी शब्दावली बढ़ चुकी थी। जब भी किसी भाषा की शब्दावली बढ़ जाती है तो इसमें पहले शब्दों-स्वरों में सन्धिकरण और बाद में संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया बढ़ जाती है। पहली प्रक्रिया में स्वर अथवा वर्ण रूप बदलते हैं जबकि दूसरी प्रक्रिया में शब्दों का लोप ही हो जाता है। पहले स्वर, फिर वर्ण पिघलते से लगते हैं और बाद में शब्द लुप्त होने लगते हैं। दो-दो, तीन-तीन, कहीं तो पांच-पांच शब्दों का एक शब्द बन जाता है। शब्द सुकड़ने से लगते हैं (देखिए—लेखक का लेख, डोगरी भाषा : मुण्ढ ते बरोस, 'शीराजा डोगरी', अंक जनवरी 1985-86)। इसी प्रकार भाषा की समृद्धता पर उस क्षेत्र में घटने वाली घटनाओं का प्रभाव भी देखा जाता है। उदाहरणत: कोई घटना विशेष कहानी के पश्चात कहावत बन जाती है और उस भाषा के साथ दूसरी भाषाओं में भी चली जाती है जिनका परस्पर संसर्ग होता है। (कहानी जो कहावत बन गई : रेडियो वार्ता डोगरी तथा हिन्दी रेडियो कश्मीर जम्मू 1980 तथा 1981) इस प्रकार कहावत भी तो किसी कथा विशेष का संक्षिप्तकरण ही हमें प्रतीत होता है।

हर भाषा में इसी प्रक्रिया से कहावतें जन्म लेती हैं और भाषा में रच-पच जाती हैं और संसर्ग की प्रक्रिया से एक भाषा की कहावतें दूसरी भाषा में भी चली जाती हैं। मसलन यूनानी भाषा की एक कहावत सॉफॉक्लेज़ ने होमर से ली है और अपने प्रसिद्ध नाटक ऑडीपस में प्रयोग की है और इसे हमने एक कश्मीरी से भी सुना था। डोगरी भाषा में इसका रूप है—"ञियाने दी नीं मरै मा ते बुड्ढे दी जनानी"। कश्मीरी भाषा में भी ऐसा ही रूप है—"बच्चे की मरे

न मां और न बूढ़े की औरत"। जब कोई व्यक्ति उदाहरण के लिए यह कहावत इस संदर्भ में कहता है तो दिल पसीज जाता है शरीर सिहर उठता है परन्तु राजा ऑडीपस पर क्या बीतती होगी जिसकी मां ही उसकी पत्नी थी। प्रायः यह कहावत अन्य हिन्दोस्तानी भाषाओं में भी कही जाती है। इसी प्रकार डोगरी भाषा में—"सण्ढ केह् बुज्झै पुत्तर बजोग" को हिन्दी क्षेत्र में—"बांझ क्या जाने प्रसूत की पीड़ा" को कश्मीरी में—"होण्ठ क्या ज़ानि पुत्तर दग्ग क्या गई।" हर भाषा की कहावत में शब्दों के अर्थ तो भिन्न हैं किन्तु भाव तो एक ही लिया जाता है कि निज अभ्यास के बिना ज्ञान नहीं होता अथवा इसी प्रकार का और भाव।

डोगरी भाषा में कहावतें डोगरा क्षेत्र के जन-जीवन से जुड़ी हुई इतनी हैं कि कहावत प्रयोग होने पर ही किसी ऐतिहासिक तथ्य अथवा घटना की ओर हमारा ध्यान चला जाता है। ऊधमपुर क्षेत्र में कहावत है—"खाने गी पण्डे ते मरने गी माधो"। इसी प्रकार की कहावत पंजाबी तथा कण्ढी क्षेत्र में चलती है—"खान पीन नूं नूरपरी ते धौन भनान नूं जुम्मा"। डोगरी में पंजाबी शब्दों के स्थान पर डोगरी शब्द हैं। ठीक इसी प्रकार की कहावत हमने कश्मीरी भाषा में भी सुनी है और नूरपरी और जुम्मा की ऐतिहासिक घटना से इसका सम्बन्ध है। सम्भवतः यह घटना कोई महत्त्वपूर्ण रही होगी। सम्भवतः ऊधमपुर के पूर्वोत्तर क्षेत्र में भी यह कहावत बड़े धड़ल्ले से कही जाती होगी किन्तु अब यह कम सुनी जाती है, क्योंकि इस क्षेत्र की अपनी कहावत ज़ोरदार लगती है जिसके पीछे एक घटना है—

रामनगर भटियाड़ी मुहल्ला के नृसिंह मन्दिर में माधो नामक एक व्यापारी व्यापार में घाटे से निराश होकर रहने लगा था। मन्दिर के लंगर में खाना मिल जाता था और भगवद् भजन करता था। पण्डा लोग भी उससे छोटा-मोटा काम करवा लेते थे। एक बार बरसात में रात को रसोई-घर में कुछ आवाज़ हुई तो माधो को भेजा गया कि देखे क्या बात है। माधो रसोई-घर में गया तो छत्त उसके ऊपर आ गिरी और मारा गया। नगर में व्यापारी वर्ग ने शोर मचाया कि पण्डा लोगों ने माधो को ही रसोई-घर में क्यों भेजा था? खुद क्यों नहीं गए? और इसी प्रकार कहा जाने लगा—'खाने गी पण्डे मरने गी माधो।'

इसी प्रकार कहावतें एक क्षेत्र में बन-संवर कर विशाल क्षेत्र में दौड़ती भागती चली जाती हैं। एक कहावत है—"जे स्हाब साम्बे सै कलिया"। अथवा "जे स्हाब नड सै कङ्थल।" व्यापारी वर्ग से जुड़ी कहावत है "जो लाभ कली की मण्डी में वही साम्बा में" अथवा "जो लाभ नड में वही कङ्थल में।" ऊधमपुर तहसील में टिक्करी के आसपास भी इस प्रकार की कहावत सुनने में

आती है और हमने पुलवामा तहसील में अवन्तीपुर-लेत्तर क्षेत्र में भी ऐसी ही कहावत सुनी है अथवा ज़िला डोडा के सिराज-पोगल परीस्तान में भी, केवल स्थान परिवर्तन के कारण नाम बदल जाते हैं। व्यापारी वर्ग की इस लूट के कारण तो कश्मीर के पुलवामा-अनन्तनाग क्षेत्र में तो "अवन्तीपुर का हुक्का" नाम की कहावत बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। पाठकों की रुचि के लिए कथा इस प्रकार है। 'अवन्तिपुर' राजतरंगिनी में एक प्रसिद्ध राजधानी रही है और व्यापारिक केन्द्र भी रहा है। इधर मुस्लिम काल में भी व्यापारिक मण्डी रही है। ग्रामीण लोग दुकानों पर जाते तो हुक्के में चिलम भरते। अपनी जेब में से तम्बाकू निकाल कर भरते मगर तम्बाकू में आग ही नहीं चलती और वे तम्बाकू ही छोड़ देते, किन्तु दुकानदार लोग जब उसी चिलम में आग डालते और हुक्का पीते तो सब कुछ ठीक रहता। दरअसल हुक्के में एक सुराख होता था जब कश भरते तो उस पर उंगली रख लेते और हवा ठीक से खिचती, तम्बाकू पीने का मज़ा लेते परन्तु ग्रामीण लोगों को इस तकनीक का पता न चलता। जब किसी ग्रामीण को पता चला तो असल बात फैल गई और "अवन्तीपुर का हुक्का" कहावत प्रयोग होने लगी।

व्यापारी वर्ग में डोगरी क्षेत्र में प्रायः कहा जाता है कि "अमृतसर का ठगा भद्रवाह जाकर सुधरता है" अर्थात् अमृतसर में माल खरीदने में ठगा व्यापारी भद्रवाह नगर की मण्डी में ही पूरे दाम पा सकेगा। इसी प्रकार "असेंगी तुस ते तुसेंगी कलिया आले" कहावत व्यापारी वर्ग में कही जाती थी कि हमें आप ठग रहे हैं आपको कली मण्डी वाले ठगेंगे। मुस्लिम काल में साम्बा, कली, नड, कङथल, भद्रवाह आदि से पंजाब का व्यापार सैण्ट्रल एशिया तक होता था। भद्रवाह और साम्बा तो अब भी नगर हैं जबकि दूसरे स्थान कुछ घरों पर केन्द्रित गांव रह गए हैं। परन्तु कहावत तो सर्वसाधारण अन्य संदर्भों में भी प्रयोग करते हैं।

एक कहावत और भी मजेदार है जो कि एक छंद-बद्ध कविता का पद्य है—

पणियां दा पानी, सुराड़े दी मित्ती,
रोन्नियां रवारे गी, गढ़ कैंह् दित्ती।

एक लड़की की व्यथा है जिसकी शादी 'गढ़' में हुई थी जहां पीने के लिए पानी पणी नामक नदी से लाना पड़ता था और लीपने के लिए मिट्टी सुराड़ा से। (मुस्लिम काल में मुगलों के आक्रमणों के समय 'गढ़' अप्पर शिवालिक में एक नगर था जो अब बिलावर-रामनगर तहसीलों के बीच रामनगर में है—देखिए लेखक का लेख—गढ़ सामना वंज—साढ़ा साहित्य 1981 ई० प्रकाशक कल्चरल

अकादमी जम्मू । किन्तु ऐसी ही एक कहावत इसी छन्द में जम्मू और थिहाल के नगरों में भी कही जाती थी—

तविया दा पानी, रिहाड़ो दी मित्ती,
रोन्नियां रवारे गी, जम्मू कैंह् दित्ती ।

आज तो जम्मू नगर में जीवन की सभी सुविधाएं प्राप्त हैं, किन्तु एक समय में ऐसी दशा थी कि अन्य नगरों की लड़कियां जम्मू नगर में शादी के पश्चात् रोया करतीं थीं और बिचोलिए को कोसती थीं ।

'चौतरियां दा घाटा' अथवा उन्नीस सौ चौंत्तीस विक्रमी का घाटा, किसी भी प्रकार की हानि अथवा दुःख होने पर लोग यह कहावत बोलते हैं । अभी कुछ दिन पूर्व बस में दरवाजे के समीप वाली एक सीट पर बैठी एक औरत के मुख से यह कहावत हमने सुनी कि इस सीट पर बैठना 'चौत्तरियां दा घाटा'' है और पं० दीनूभाई पन्त ने भी अपनी प्रसिद्ध कविता 'शहर पहलो पहल गे' में 'घाटे चोत्तरिएं दे पे' कहावत प्रयोग की है । दरअसल 1934 विक्रमी में खरीफ की उपज पक रही थी कि अतिवृष्टि के उत्पात से अनाज और पशुओं का चारा बिल्कुल नष्ट हो गया । बड़ा भीषण अकाल पड़ा । मनुष्यों को घास भी खाने को नहीं मिलती थी । बसंत में जब गेहूं के बीज में 'सूढ़ी' साग उत्पन्न हुआ तो कुछ सहारा हुआ । लोगों ने वृक्षों के पत्ते भी खाए । मुन्शी मेघ ने अपना प्रसिद्ध गीत रचा :—

डाह्डा चौत्तरियां दा काल लोको,
हल्लें दे बिकी गे फाल लोको,
बिकी गे बालूं ते बरलाक लोको ।

इस अकाल में हर वर्ग को हानि हुई थी । अतः "चौत्तरियां दा घाटा" डोगरी में प्रसिद्ध कहावत बन गई है प्रायः डोगरी के साहित्यकारों ने इस कहावत का प्रयोग किया है ।

डोगरी भाषा में बहुत-सी कहावतें सामन्ती युग के सियासी अत्याचार, बर्बर शोषण को भी इंगित करती हैं । मसलन, "क्या सिक्खा शाही है ? 'नाठ' पड़ी है ? डुग्गर में सिख शासन की लूट-खसूट को प्रकट करती हैं क्योंकि मुगलों के आक्रमण के समय में 'नाठ' पड़ती थी लोग पहाड़ों में शरण ग्रहण करते थे किन्तु एक थोड़े से अन्तराल में स्थिति सुधर जाती थी किन्तु सिक्ख-आक्रमण कई बार हुए और शासन भी रहा । 'नाठ' का समय कुछ लम्बा रहा और मियां डीडो तथा रामनगर के चनोतर और मेघ एक दीर्घ काल तक विद्रोह की स्थिति में रहे और अपने सिर कटवाते रहे । सर्वसाधारण जन जीवन त्रसित रहा । इन दो कहावतों का प्रयोग उस समय किया जाता है जब कोई व्यक्ति यह प्रतीत

करे कि उसे लूटा जा रहा है अथवा उस पर अन्याय हो रहा है। जब डुग्गर क्षेत्र में कोई व्यक्ति इनकार में गर्दन हिलाता है तो दूसरा झट बोल देता है, तू यूं कांप रहा है मानो तूने भी "जित्तो के गेहूं" चखे हैं। बाबा जित्तो की आत्म-हत्या के पश्चात उसकी गंदुम जिस मनुष्य, पशु तथा परिंदे ने खाई थी, कहा जाता था कि उनकी गर्दनें हिलने लगीं थीं मानो लकवा मार गया हो।

"सारें गै उन्न तुआरनी" कहावत आर्थिक शोषण की अवस्था में प्रयोग होती है। सिख शासन में पंजाब से डुग्गर पर आक्रमण हुए और अन्त में जम्मू के जम्वालों की सहायता से डुग्गर-राज्य तहस-नहस हुए तो कई कहावतें फूट पड़ीं। बंधरालता में किसी ने भेड़ से पूछा कि तेरे लिए बंधराल बेहतर है अथवा जम्वाल? तो उसने उत्तर में कहा कि सभी ने ऊन ही उतारनी है। डोगरा जन-जीवन ने ऐतिहासिक घटनाओं को कहावतों के दर्पण में किस खूबी से उतारा है!

अराजकता को व्यक्त करने के लिए हिन्दोस्तानी में एक कहावत है—"अंधेरी नगरी और चौपट राजा. टके सेर भाजी टके सेर खाजा।" डोगरी में भी इसका अनुवाद है, ,'अन्नी नगरी ते भुन्दु राजा, टकै सेर भाजी टकै सेर खाजा।" किन्तु अराजकता को प्रकट करने के लिए डोगरी में यह कहावत अधिक ही प्रचलित है—"चोर चक्का चौधरी ते लुण्डी रन्न परधान", अथवा—"सुन्ने घर कम्हैरें दे ते बिल्ले छोलन छाहीं", अथवा—"दुद्धे दी राखिया बिल्ली", अथवा—"बांदरै हत्थ उस्तरा", आदि अन्याय, शोषण, लूट, अराजकता की अवस्था में जन जीवन में ये कहावतें प्रयोग की जाती हैं। कश्मीरी क्षेत्र में 1930 की दशाब्दी में शेर-बकरे की लड़ाई से कई इसी प्रकार की कहावतें बनी हैं।

'त्रैऽत्रै पत्तर पलाह' की डोगरी कहावत हिन्दोस्तानी में 'ढाक के तीन पात' तो हर लिहाज से परस्पर अनुवाद लगता है किन्तु डोगरी में 'उऐ खुण्ड ते उऐ गलाखे' कहावत आम प्रचलित है। 'तीन पात' की भान्ति 'तीन क्याड़े' कहावत किसान वर्ग में विशेष चलती है जिसका प्रयोग हमने अपने साहित्य में किया है। इस कहावत के पीछे एक लोक कथा है कि एक बार एक भूदास इस आशय से मार्ग में घास काटने लगा कि इस मार्ग से जब उसका भूस्वामी गुज़रेगा तो उसे "जै देवा" कह कर अभिवादन करेगा। किन्तु अचानक जब भूस्वामी आया तो उसे पूछा, "अबे क्या कर रहा है?" भूदास की सिट्टी गुम हो गई और घबराहट में अभिवादन करना ही भूल गया और घास के कटे हुए तीन पूलों की ओर संकेत करके बोला, "महाराज त्रै क्याड़े"। तीन पूलों के बजाय 'तीन क्याड़े' शब्द अनायास निकले। जब कोई व्यक्ति बड़ी शेखी बघारता है अथवा किसी की सहायता करने का वचन देता है और समय पर असमर्थ हो जाता है तो ऐसा भी कहते हैं—"बस हो गए वही तीन क्याड़े।"

'नक्का दा सिनकी होऊँ-र टकाना' कहावत नारी वर्ग में अधिक प्रचलित है; जब काम अधूरा छोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार "तौली माई नक्क सलाई" कहावत भी नारी वर्ग में उतावलेपन को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होती है। प्रायः प्रत्येक भाषा में इस प्रकार की कहावतें कही जाती हैं। अंग्रेजी में भी **'हरी मेक्स करी'** कहा जाता है और शोलोखोव ने भी अपने प्रसिद्ध रूसी उपन्यास (धीरे बहे दोन रे) में इस प्रकार की कहावत प्रयोग की है **'हरीड वर्क इज़ बोश्ड वर्क'** (पृष्ठ 231 भाग IV)।

जब हम अन्य भाषाओं का साहित्य पढ़ते हैं तो डोगरी भाषा की भान्ति कहावतें देख कर हैरान हो जाते हैं, भले ही जर्मन हो अथवा रूसी अथवा चीनी साहित्य, विशेषकर ग्रामीण वर्ग में प्रचलित कहावतें। नारी वर्ग के प्रति सामंत काल में जो धारणाएं पुरुषों में थीं उसका प्रभाव किसान वर्ग पर अधिक था। मसलन, 'जनानिएं दी मत खुरिया', शाब्दिक अर्थ 'औरतों की अकल एड़ी में', कश्मीरी में, "औरतों की अकल झौंटे में", रूसी में, एड़ी तथा झौंटे के स्थान पर 'पीठ' शब्द प्रयोग होता है इसका अर्थ "बैक" पीछे भी हो सकता है।

डोगरी भाषा में जितनी कहावतें ग्रामीण वर्ग में विशेषतः किसानों में और उनमें भी अधिक नारी वर्ग में प्रयोग होती हैं उतनी शहरों में 'फैशनेबल' वर्गों में नहीं। डुग्गर में ग्रामीण जन जीवन में कोई भी वाक्य बिना कहावत के विरला ही सुना जाता है। भले ही शान्त अवस्था में अथवा उत्तेजना में वाक्य प्रयोग हो। यहां तक कि अश्लील तथा सैक्स सम्बन्धी वार्तालाप में भी सुन्दर कहावतें प्रयोग होती हैं और बहुत बार साधारण सुन्दर वार्तालाप में ऐसी कहावतें प्रयोग होती हैं जिनका शाब्दिक अर्थ साहित्यिक शैली में अति घृणित तथा अश्लील समझा जाता है और बहुत बार बच्चों-स्त्रियों के मुंह से भी सुनी जा सकती हैं बिना किसी संकोच के। किन्तु इधर ऐसे उदाहरण उद्धृत करना जंचता नहीं, जब कि आम बातचीत में ये स्वाभाविकता से निस्संकोच उद्धृत की जाती हैं और कहने तथा सुनने वालों को शाब्दिक अर्थ का आभास नहीं होता जबकि लाक्षणिक अर्थ तुरन्त आत्मसात कर लिया जाता है। हमने स्वयं अपने साहित्य में ऐसी कहावतों का प्रयोग किया है कि हमें लेशमात्र भी अहसास नहीं हुआ कि आलोचक की चाबुक हमारी पीठ पर पड़ सकती है। दरअसल जर्मन, रूसी, चीनी साहित्य ऐसी कहावतों से भरा पड़ा है तथा अरबी-फारसी में भी इसकी कमी नहीं जबकि हिन्दी-उर्दू साहित्य इनसे अछूता रह गया। गैटे, गोगोल, शोलोखोव, झाओ लिवो जैसे महान लेखकों ने अपने पात्रों द्वारा ऐसी कहावतें प्रयोग करवाई हैं और उन्हें झिझक नहीं होती किन्तु कृष्णा सोबती के उपन्यासों में मीन-मेख निकाली जाती है भले ही भर्तृहरि, कालिदास, भास अथवा तुलसीदास ही इस प्रकार की कहावतें प्रयोग करें तो किसी को आभास ही नहीं

होता। चीनी उपन्यास 'हरीकेन' में झाओ लिवो एक कहावत प्रयोग करते हैं जोकि पुरुषों को कम ही मालूम है—"बैड बैट" किन्तु शोलोखोव ने भी स्त्रियों से दो बार ऐसी ही कहावत (कज्ज़ाख क्षेत्र में) कहलवाई है जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद बैड-बैड किया गया है। शोलोखोव ने कज्ज़ाख जनजीवन भोगा है और उन्होंने इस कहावत को दो रूपों में प्रयोग किया है। पहली बार यह पढ़ा तो हम अटक गए किन्तु बड़े से बड़े शब्दकोश से भी हमें सहायता न मिली और आगे पढ़ने लगे तो ज्ञात हुआ कि चीनी पुरुषों को भी इसका ज्ञान नहीं था। डोगरी में भी इस प्रकार की कहावत किसान स्त्रियों में कही जाती है।

डोगरी भाषा की कहावतें कई बार इतनी विचित्र और जनजीवन से इतनी घुली-मिली लगती हैं कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलतीं। होंगी अवश्य, परन्तु ग्राम्य भाषा में, साहित्यिक भाषा में हमें नहीं मिलीं। सम्भवतः साहित्यकारों को नहीं मिली होंगी कि आंचलिक साहित्य में उनका प्रयोग कम हुआ है। डोगरी में 'पानी से पतला और तिनके से हल्का पड़ना' कहावत तो हमें चीनी साहित्य में भी मिली है अन्तर केवल यह है कि तिनके के स्थान पर 'पंख' शब्द प्रयोग हुआ है।

डोगरी में एक जैसी लगने वाली कहावतें बहुत हैं किन्तु सूक्ष्मता की दृष्टि से ही उनका अन्तर प्रतीत होता है और प्रत्येक कहावत का अपना विशेष स्थान और अवस्था है भले ही भाव एक-सा ही लगता है। जैसे, "दित्ती खल नीं खां ते कोल्हू चट्टन जां" शाब्दिक अर्थ में—पशुओं का स्वभाव है कि खली दी जाए तो खाएंगे नहीं परन्तु बाद में कोल्हू चाटने जाएंगे। लाक्षणिक अर्थ है कि बिन मांगे वस्तु दी जाए तो नहीं लेंगे किन्तु बाद में भीख मांगेंगे। इसके साथ ही—बड़ा कौआ अन्त में गन्दगी पर ही बैठता है अथवा "बाद में रहे चूसे के चूसे" (चूहिया और ऋषि की कथा का सार—पंचतन्त्र) अथवा "काला भिड्डू मत्थै फुल्ली घिरी घिरी उत्तै चु'ल्ली" शाब्दिक, "काला भेड़ा माथे पर फूल घूम-घाम कर अपने ठिकाने पर"। तीनों कहावतों का लाक्षणिक अर्थ परस्पर मिलता-जुलता है किन्तु सूक्ष्मता में अन्तर अवश्य है।

'दिन होऐ अत्तां मत्तां, रात पवै चिरखा कत्तां", शाब्दिक अर्थ दिन को यूं तूं करते गंवा दिया और रात पड़ी तो काम किया अथवा डोगरी में—"आई जान्नी ते सयाओ कन्न" शाब्दिक अर्थ में, "आई बारात तो बेटी के कान बुंदे डालने के लिए छेदो। दोनों कहावतों का भाव कुसमय में काम करना होता है।

"कनक खेत, कुड़ी पेट,
आ जुआइया मण्डे खा।"

हिन्दी में हम कह सकते हैं—

गंदुम खेत में, बेटी पेट में,
आ दामाद मेरे, मण्डे खाओ।

"खड्डे दिया छेड़ा, नुक्कां पुज्ज गै खोलुड़नियां" नदी की आवाज़ पर ही जूते उतार देना हिन्दी में होगा। दोनों कहावतों का भाव है कि अभी आशा भी नहीं कि तैयारी आरम्भ कर दी। परन्तु परस्पर इतनी सूक्ष्मता है कि ठीक स्थान पर प्रयोग न करने से भी भाव तो निकल आएगा किन्तु वाक्य पर ज़ोर घट-बढ़ जाएगा।

"लक्क बन्नेआं रोड़ेआं ते मुन्नां कोह् लौह्र" शाब्दिक अर्थ है अरोड़ा लोग जब कमर बांध लें तो लाहौर पौमा कोस हो जायेगा। ऊधमपुर के पञ्चास्ता क्षेत्र में यूं कहा जाता है "झाण्डी'र धोती ते लल्लै'र बरासूई"। दोनों का भाव है कि कमर कस लो तो काम आसान हो जाता है। पहली कहावत विशेषकर डुग्गर की घुमन्तु जातियों में अधिक प्रचलित है जबकि दूसरी कहावत सर्व-साधारण में एक ही क्षेत्र में बोली जाती है। इसी प्रकार की कहावत ऊधमपुर में टिक्करी मण्ड क्षेत्र में और बिलावर-बसोहली में प्रचलित हैं केवल नाम ही स्थानीय हैं।

"मियें दी लैह्र, केह् घड़ी केह् पैह्र" नगरों में 'सोडा वाटर का जोश में बदलती हैं, जबकि "कुतै गीटैं-गीटैं, कुतै गॅल-गॅल अथवा कुतै लक्क-लक्क कुतै गीटैं-गीटैं", अथवा "घड़ी में तोला पल में माशा", उतावलेपन को व्यक्त करने के लिए प्रयोग करते हैं।

हिन्दी में कहावत है, "अहमद की पगड़ी महमूद का सिर" तो डोगरी में "नानी खसम करै दोह्तरा चट्टी भरै", कहा जाता है।

क्रोध व्यक्ति को किसी पर होता है तो निकलता किसी दूसरे पर है, के भाव को दर्शाने के लिए डोगरी में तीन कहावतें हैं—

जली दी बुड्ढी तलडें-र,
तत्ते पठोर जगतैं-र।
जली दी बुड्डी भत्तै-र,
तत्ता पठोरा हत्थै-र।
जली दी बुड्डी बब्बरें-र,
तत्ते पठोरे टब्बरै-र।

"म्हराज बेड़ी ते यार गाह्नी" शाब्दिक अर्थ है दूल्हा नौका में नदी पार करता है जबकि यार पैदल नदी लांघता है। ('यार' शब्द का पर्याय डोगरी में अन्य शब्द है जोकि हिन्दी भाषा में अश्लील है।) इस कहावत के लिए 'गवाह्

चुस्त ते मुद्देई सुस्त' भी प्रयोग होती है किन्तु पहली कहावत आवेश तथा अधिक बल देने के लिए प्रयोग की जाती है।

"परमात्मैं डाह्‌ली नुआई" भगवान ने डाल नीचे झुकाई अथवा भाग्य से कठिनता टल गई जो कि अंग्रेज़ी के 'टू प्लॅक ऐन ऑलिव ब्राञ्च' से मिलता-जुलता भाव प्रकट होता है। परन्तु "जिन्दे सूत्तर सिद्दे उंदियां पौन बारां" कहावत भी इसी संदर्भ में प्रयोग होती है परन्तु इसमें विनम्रता नहीं है। भाग्य के बुरे होने पर यूं कहावत कही जाती है, "भागें दे बलिया, रिद्धी खीर ते होई गेआ दलिया" लाक्षणिक अर्थ है आशा महान रखना किन्तु भाग्य ने पूरी नहीं होने दी।

'भज्जी-त्रुट्टी भिरी जम्मुआं' शाब्दिक अर्थ है कि टूट-फूट जाए तो फिर जम्मू नगर में ही जाना पड़ता है। भाव है कि काम बिगड़ जाए, मशीनरी खराब हो जाए अथवा अन्याय हो तो जम्मू नगर में जाना पड़ता है। कहावत में जम्मू नगर की विशालता का भाव निकलता है। डोगरी कवि ध्यान सिंह ने अपनी कविता 'जम्मू' में इस कहावत को यूं प्रयोग किया है—

भज्जी-टुट्टी भी बी ते जम्मुआं ही जेह्‌ड़ी कदें,
बसदी ओ बस्ती अज कुसेदा गै गैह्‌र ऐ।

(टूटी-फूटी फिर भी तो जम्मू ही जो कभी पहुंचती थी आज यही नगर किसी की जागीर हो गई है।)

"करी'यी सुत्थने आली, फसी'यी घग्घरे आली," का शाब्दिक अर्थ है कि कर गई सूथनी वाली और फंस गई घागरे वाली। यह कहावत इस घटना से जुड़ती है कि बच्चे को डायन मन्त्र सूथनी (तंग पजामा) वाली औरत कर गई परन्तु फंस गई घागरे वाली औरत। मनचले जवान इश्क-मिज़ाज़ यूं जोड़ते हैं कि इश्क मार गई सूथनी वाली मगर फंस गई घागरे वाली अर्थात् सूथनी-चूड़ीदार पजामा उतारने में समय लगता है परन्तु घागरा आसानी से उठाया जा सकता है। बुरा काम सूथनी वाली कर गई मगर फंसी बेचारी घागरे वाली। शाब्दिक अर्थ तो अश्लील लगता है किन्तु डोगरा जन-जीवन में इसका प्रयोग आम है कि कसूर किया बुरे आदमी ने किन्तु फंस गया शरीफ आदमी, जो निर्दोष था।

"औना त्राक्किया ते बौह्‌ना पसारै" खाने पर आना बिना बुलाए और बैठना बरामदे में अथवा "कणै औना अनसद्दै ते गाना आल जञाल"—'एक आना बिना बुलाए और फिर गाना भी बेसुरा,' का भाव दोनों कहावतों में किसी अनावश्यक व्यक्ति का बीच में टांग अड़ाना अथवा काम बिगाड़ना और खड़पंच (प्रधान) बनना।

"बगानी छाही-र मुच्छां पलैनियां" अथवा "बगानी छाही'र मुच्छां कतरानियां" शाब्दिक अर्थ है बेगानी छाछ की आशा में मूछें तेज़ करना अथवा कटवा देना कि छाछ पीने में रुकावट न आए। भाव है कि पराई वस्तु की आशा में अपनी भी गंवा देना। इसी संदर्भ में डोगरी में "अम्बरसरी कड़ाह् होई जाना" कहावत भी प्रयोग की जाती है जो कि इस घटना से जुड़ी है कि एक लालची व्यक्ति स्वर्ण मंदिर अमृतसर में एक हाथ में हलवा-प्रसाद पाता है तो इस आशा में कि इतनी भीड़ में प्रसाद बांटने वाले को कहां पता चलेगा कि दूसरी बार लिया जा रहा है, अतः उसने प्रसाद वाला हाथ पीछे कर लिया और दूसरा हाथ पसार दिया। प्रसाद बांटने वाले ने क्रोध में गर्म-गर्म खमचा हाथ पर मारा तो हाथ जल गया और पीछे से कुत्ता दूसरे हाथ का प्रसाद झपट कर ले गया और काट भी गया। लोभी व्यक्ति को जब लोभ करते हानि हो तो ऐसा कहा जाता है।

"घर-घर मेरे सौह्रिये खड़दुम्बी मेरा नां" अथवा "भाई दे केई यार, कोई नाई कोई कम्हार" कहावतें स्त्रियों-पुरुषों में अलग-अलग प्रयोग होती हैं। भाव दोनों का है, आवारागर्दी करना अथवा हल्के मित्रों में समय नष्ट करना।

किसान लोगों में नारी वर्ग को हीन समझने के लिए बहुत-सी ऊट-पटांग कहावतें प्रचलित की गई हैं। जैसे :—

रन्न लुच्ची, दरवाजै च खुण्डी,
मंझी उच्छी, घरै मुण्ड ढक्की,
इक्क मुसीवत दी निशानी एँ।

शाब्दिक अर्थ यूं हो सकता है :—

बुरी औरत, दहलीज पर खूंटी,
खाट ओछी, घर के समीप ढक्की (चढ़ाई का मार्ग)

चारों चीजें मुसीबत की जड़ हैं। परन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी के "ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी" से बुरी कहावत नहीं।

अग्ग बलदी रुट्टी पकाइऐ,
रन्न बसदी खस्म खाइऐ।

शाब्दिक अर्थ यूं होगा कि आग खाना पकाने के पश्चात् ही ठीक जलती है और बुरी औरत पति की मृत्यु के पश्चात् ही घर में बैठती है।

'ढक्की बल्लें ते रन्न गल्लैं', का शाब्दिक अर्थ है कि पहाड़ी ढक्की पर चढ़ना हो तो धीरे-धीरे चढ़ा जाता है और बुरी औरत को वश में करना हो तो बातों में लगा कर ही किया जा सकता है।

गद्दिदएँ दे कुत्ते ते कोहलुआ दा दांद,
जनानिएं दियां गल्लां नेईं मुण्ढ नेईं पांद ।

शाब्दिक अर्थ है कि गद्दियों के कुत्तों का भौंकना और कोल्हू के बैल के चलने का आदि अन्त नहीं, इसी प्रकार औरतें यदि बतियाना आरम्भ कर दें तो इसका आदि अन्त नहीं ।

खस्म मरैं कट्टी लैना ओ,
यार मरै किंयां कट्टना ओ ।

बुरी औरत को पति की मृत्यु तो सहन हो जाती है जबकि आशिक की मृत्यु सहन नहीं होती ।

'भिट्टी कुन्नी भिरी बी सुच्ची' अथवा
न्हात्ती धोत्ती ते सुच्ची ।

हिन्दोस्तानी में इसी प्रकार की मिलती जुलती कहावत है और इसे योगेश गुप्त जी ने भी अपने उपन्यासों में प्रयोग किया है ।

जैसे :—नहाई धोई कटोरा सी ।

मित्र-घात के विषय में डोगरी जन जीवन में बहुत-सी कहावतें कही जाती हैं और प्राय: स्थान-जाति विशेष के लोगों पर प्रहार किया जाता है। बनिया लोगों के व्यवहार के विषय में इतनी भद्दी-अश्लील कहावतें डोगरी में प्रयोग होती हैं कि इतनी तो कज्ज़ाख लोग भी यहूदियों के विषय में प्रयोग नहीं करते होंगे। पण्डितों, मुल्लाओं, पढ़ीनों, खड़पंचों के विषय में तथा भूस्वामियों के व्यवहार पर भूदासों ने इतनी अश्लील और भद्दी कहावतें प्रयोग में लाई हैं और डोगरी भाषा में प्रयोग होती हैं कि कई बार लाठी चल जाती है। जम्मू के एक साहित्यकार को तो एक कहावत के प्रयोग पर जेल यात्रा भी करनी पड़ गई थी। इधर हम 'फलां' शब्द जोड़ कर उदाहरण दे रहे हैं :—

'पट्टुए दी गण्ढ ते फलाने दी यारी' शाब्दिक अर्थ में पट्टू के कपड़े की गांठ जल्दी खुल जाती है, फलां जात की यारी टूट जाती है ।

"दियोर दी उङारी ते फलाने दी यारी" अथवा किश्तवाड़ी में 'कायरू नार नेईं (आग नहीं) फलाना यार नेईं । शाब्दिक अर्थ में देवदार अथवा कायल की मकड़ी की आग बुझ जाती है और फलां जात के मित्र की यारी नहीं रहती। फलां शब्द के स्थान पर एक जाति किसी दूसरी जाति का नाम जोड़ देती है ।

अथवा **फलाना अंग नेईं पवित्तर,**
फलानी जात नेईं मित्तर ।

अश्लीलता भरी कहावतें तो चोरी-चोरी पीठ पीछे कही जाती हैं अथवा पागल, बच्चे या शराबी लोग बिना किसी संकोच के प्रयोग कर लेते हैं।

पशुओं, परिंदों, कीड़े मकोड़ों तक की उपमाएं डोगरी कहावतों में प्रयोग में आती हैं। एक प्रसिद्ध कहावत डुग्गर में सामंत भू-स्वामियों के विरुद्ध भूदासों के विद्रोह की ओर इंगित करती है, शाब्दिक अर्थ है डोम बंधा हुआ, लेला कटा हुआ। यदि ऐसा न किया जाए तो दोनों विद्रोह करेंगे।

उधमपुर जिले के घुर्त्ता क्षेत्र में शाहूकारों की एक जाति और ठक्करों की कुरयाण जाति के सम्बन्ध में एक लोकप्रिय कहावत प्रसिद्ध है :—

रामनगरे दा शाहुकार (एक जात विशेष का नाम)

घुर्त्ते दा कुरयाण,

नग्गर पुज्जग तां परमाण।

कथा यूं है कि बंधरालता राज्य में घुर्त्ता की जागीर 'कुरैण' जाति के ठक्करों के पास थी जो कि बड़े वीर, मनचले तथा उद्दण्ड स्वभाव के कहे जाते थे। एक जाति विशेष का शाहुकार घुर्त्ता में अपना कर्जा लेने के लिए 'कुरैण' जाति के किसी व्यक्ति के घर गया तो उसकी पिटाई हुई और शाहुकार को विवश किया गया कि बही-खाते में दर्ज करे कि कर्ज़ा बेबाक हो गया है। मृत्यु के भय से बही-खाते पर ये पंक्तियां लिख दीं जिनमें 'परमाण' शब्द के दो अर्थ होते हैं। हिन्दोस्तानी पंक्तियां यूं हो सकती हैं :—

रामनगर का शाहुकार,
घुर्त्ते का कुरयाण,
रामनगर पहुंचे तो प्रमाण।

'परमाण' का एक अर्थ निकलता है कि रामनगर पहुंचेगा तो देखेंगे अर्थात् नहीं पहुंचेगा, परन्तु दूसरा अर्थ है 'सबूत'। राजा के पास रामनगर में प्रार्थना की गई तो वहां 'कुरयाण' व्यक्ति ने कहा कि कर्जा बेबाक हो गया क्योंकि बही-खाते में दर्ज किया है, परन्तु उधर तो दूसरा अर्थ निकाला गया और शाहूकार को अपना धन मिल गया। कर्ज पर यदि झगड़ा हो तो यह कहावत कही जाती है।

प्राय: देखा जाता है कि डोगरी-लोक-कथाओं से निकल कर कहावतें आम भाषा में यूं मिल गई हैं कि शब्दों का अर्थ बड़ा भिन्न लगता है और भाव और निकलता है। बहुत बार कहावतें लम्बी कविताओं से निकलती हैं कि वक्ता जब यह प्रतीत करता है कि वार्तालाप में भाव स्पष्ट नहीं होता तो चार-पांच पंक्तियां एक साथ बोल देता है। जैसे :—

खस्म बुड्ढा ते लाड़ी तरणी,
जे आखै सै उयै करनी ।

शाब्दिक अर्थ है कि पति बूढ़ा और पत्नी जवान हो तो जो कुछ पत्नी कहे वह करना पड़ेगा । यह कहावत बूढ़े की शादी पर कही जाती है और इस पर एक डोगरी हास्य नाटिका भी थी ।

"भुक्खी मैह् ते सड़ा दो भो,"

शाब्दिक अर्थ है भूखी भैंस के लिए सड़ा हुआ भूसा भी बेहतर है । कहावत उस समय कही जाती है जब बड़ी आयु की लड़की को वर प्राप्त न हो और किसी बूढ़े विधुर से शादी हो जाए ।

'नुक्कर बछेरी ते लिड्डी खच्चर' कहावत का भी यही भाव लिया जाता है । रूसी भाषा में शोलोखोव ने इससे मिलती जुलती कहावतें प्रयोग की हैं जो कि कज़्ज़ाख लोगों में प्रचलित थीं । श्री ओम गोस्वामी ने इस कहावत को अपनी एक कहानी का शीर्षक भी रखा है । (देखें, सुन्ने दी चिड़ी)

"घोड़ा'रा उतरगा तां जानेआं" कहावत हिन्दोस्तानी में आगे-आगे देखिए होता है क्या, जैसा भाव प्रकट करती हैं । इसके पीछे यूं कथा है कि एक कानी लड़की का दूल्हा, घोड़े पर सवार बारात लेकर आया तो उसकी सहेलियां सिठनियां गाने लगीं कि हमारी कानी ने दूल्हे मियां का मन मोह लिया है । दूल्हे मियां ने उत्तर में कहा कि घोड़े पर से उतरूंगा तो जान लेना कि मेरे गले में 'घेघा' (कण्ठमाला) है । पूरा छंद यूं है :—

मण मोह्या स्हाड़िया काणिआं,
घोड़ै-रा उतरगा तां जानेआं ।

परन्तु कहावत में तो अन्तिम पंक्ति ही कही जाती है ।

इसी प्रकार एक कहावत "कन्नै हा पुत्तर संदोखा ते नेईं किश धोखा", उस समय प्रयोग की जाती है जब कि पंच-निर्णय में पक्षपात किया जा रहा हो । इसके पीछे यह कथा है कि एक बार नदी में बाढ़ आई थी कि एक पशु बहता हुआ आया और उसे खा लिया गया । बाद में ज्ञात हुआ कि यह पशु गधा (खोता) था । गधे का मांस वर्जित है, पाप है । अतः एक व्यक्ति किसी पण्डित के पास प्रायश्चित-निवारण पूछने के लिए गया और पण्डित जी ने उसे प्रायश्चित निवारण के लिए यज्ञ, तीर्थ यात्रा, ब्राह्मण भोज आदि करने को कहा तो उसने कहा कि आपका पुत्र संदोखा भी मेरे साथ था और उसने भी तो गधे का मांस खाया है । क्या भला उसे भी प्रायश्चित करने के लिए यह कुछ करना पड़ेगा ? तो पण्डित जी ने झट अपनी पोथी का पन्ना पलटा और पढ़ना आरम्भ किया कि :—

बाढ़ आई, बाढ़ आई,
बहता हुआ गधा आया,

सात प्रकार के जल से धुल कर शुद्ध हुआ,
साथ ही बेटा संदोखा भी था,
अतः अब कोई दोष और संशय नहीं।

डोगरी में यूं कहावत है :—

हाड़ आया, हाड़ आया,
रुढ़दा आया खोत्ता,
सत्तैं पानिएं धोत्ता,
कन्नै हा पुत्तर संदोखा,
इसदा नां किश प्राह्‌चित
ते नां किश धोखा।

पंच-निर्णय में पक्षपात के लिए और भी बहुत-सी कहावतें डुग्गर में प्रचलित हैं। 'अपने पुत्तर दूएं दे पड़गट्ट' (अपने पूत दूसरों के कपूत) 'बगानैं भत्तैं मित्तर बनाना (बगाने भात से मित्र बनाना) भाव है, किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु को दूसरे को देकर स्वयं अपने लिए हमदर्दी पैदा करना अथवा पंच-निर्णय में किसी का पक्षपात इस आशय से करना ताकि मित्र बन जाएं। "अपनियां फिरन कुआरियां ते बगानियां धर्म-धिय्यां (अपनी लड़कियां कुंआरी घूमें किन्तु दूसरों की धर्म-पुत्रियां) कहावत उस समय कही जाती है जबकि व्यक्ति दूसरों को सुधार करने की शिक्षा दे और स्वयं दोषों से भरा हो।

जब कोई व्यक्ति किसी की बात न माने और हठ-धर्मी पर तुल जाता है तो डोगरी में कहावत कही जाती है कि ; "पेंचें दा गलाना सिर मत्थै बो स्हाड़ा परनाला उत्थैं दा उत्थैं।" (पंचों का कहना सिर माथे पर, परन्तु हमारा 'परनाला' वहां का वहां ही रहेगा।)

'पुत्तर भां मरै बो नूहें दा गमान भज्जै' (पुत्र भले ही मर जाए परन्तु बहू विधवा जरूर हो जाएं कि इसका घमण्ड टूटे) कहावत उस समय कही जाती है जबकि शत्रु को हानि पहुंचाने के लिए अपनी अधिक हानि की जाए।

कृपण लोगों के लिए डोगरी भाषा में बहुत-सी कहावतें हैं—सुन्दर भी, अश्लील भी और प्रत्येक कहावत के पीछे कोई न कोई लोक कथा सम्बन्धित है। जैसे, "कां दा हत्था दा चिच्ची (कौए के हाथ से मांस मिलना), मूत्तरा चा मच्छियां तालनियां (मूत्र से मछली ढूंढना) मुड़दें'रा कफ्फन तुआरना (मुर्दों से कफन उतारना) थुक्के दे बब्बरू पकाना (थूक में पकवान पकाना) इल्लै दै आह्‌लड़ै च मांस (चील के घौंसले में मांस) जीभा दा रस चोना, (जीव्हा से रस टपकना) आदि बहुत-सी कथाएं हैं जिनसे कहावतें निकलती हैं।

डोगरा जन जीवन में कहावतों की, बहुत भरमार है, विशेषत: निम्न वर्गों के ग्रामीण लोग तो बिना कहावत के कोई वाक्य ही नहीं बोलते और उनमें भी तो नारियों और बच्चों की भाषा में इनकी पुट कुछ अधिक है। डोगरी साहित्यिक भाषा में अभी तो ठेठ डोगरी शब्दों की भी पुट कम ही दीखती है अत: कहावतें तो बहुत ही कम हैं। कल्चरल अकादमी जम्मू के सहयोग से बहुत-सी कहावतें, मुहावरा कोश, कहावत कोश तथा डोगरी डिक्शनरी में संकलित की गई हैं। हमारा विचार है कि यदि डोगरी साहित्य को डोगरा जन-जीवन से जोड़ना है तो जनता की भाषा में लिखा जाए और इसके लिए कहावतों का ज्ञान होना भी ज़रूरी है। उत्पादक शक्तियां प्रगतिशील होती हैं। उत्पादन में जीत के लिए नित्य ही उनका अनुभव आगे-आगे बढ़ता है और उनके नित्य नये आविष्कार, भाषा संस्कृति-सभ्यता को आगे-आगे धकेलते हैं अत: जनता नित्य नये शब्दों को जन्म देती है। हमारा यह अनुभव है कि साहित्यकारों से अधिक शब्दावली, कहावतें, मुहावरे पहेलियां, टपकोलियां, सर्वसाधारण जन जीवन में घड़ी जाती हैं, जोकि उनके नित्य के जीवन के घटना-क्रम, उत्पादन अनुभव, वैज्ञानिक आविष्कारों के लिये संघर्ष अथवा वैज्ञानिक प्रक्रिया से जन्म लेती हैं। शोषक वर्ग के प्रति इनमें आक्रोश, घृणा, परिहास का पुट स्पष्ट देखा जा सकता है। डोगरी में कहा भी जाता है, ''चन्दरे दे पन्दरां ते भोले दे सोलां'' (चतुर के पन्द्रह तो भोले के सोलह)।

डोगरी कहावतों में (जिनको उद्धृत किया है) हमें डुग्गर की नदियों, घाटियों, पर्वतों, बनों, चश्मों, झीलों, खेतों उपवनों, हर वर्ग के लोगों के जीवन के दर्शन होते हैं। इन कहावतों में एक दीर्घ इतिहास, संस्कृति छुपी हुई है।

□

कश्मीरी कहावतों और पहेलियों में लोक-जीवन की झलक

☐ अर्जुनदेव 'मजबूर'

संसार की सभी भाषाओं में कहावतों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह कहावतें समय-समय पर जीवन के गहरे अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए गढ़ी जाती हैं और धीरे-धीरे भाषा का अंग बन जाती हैं। इनके द्वारा जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखा और परखा जा सकता है।

कश्मीरी, एक सक्षम और प्राचीन भाषा होने के कारण अपनी कोख में सैंकड़ों लोकोक्तियों को संजोए हुए है। 1883 ई० में प्रसिद्ध ईसाई प्रचारक जे० हिन्टन नोल्ज़ का ध्यान कश्मीरी कहावतों की ओर इसलिए आकर्षित हुआ कि वे कश्मीरी भाषा का प्रकृष्ट रीति से अध्ययन करना चाहते थे। उन्होंने यह कार्य श्रीनगर में बैठ कर आरम्भ किया। मज़दूरों, नानबाइयों, नाइयों, धोबियों तथा दुकानदारों से बातें करते हुए उन्होंने कई कहावतें इकट्ठा कीं और 1885 ई० में इन्हें 'ए डिक्शनरी आफ कश्मीरी प्रावर्बस'—कश्मीरी लोकोक्तियों का कोष—नाम से प्रकाशित किया।

इस पुस्तक में कहावतों, मुहावरों, पहेलियों तथा शिक्षाप्रद बातों के अतिरिक्त 'लल-द्यद', 'नुन्द ऋषि' 'अरनिमाल' और 'हब्बा खातून' के कुछ पद्य सम्मिलित हैं। चूंकि यह काम शोधपूर्ण ढंग से नहीं किया गया है, अतः इस में कुछ न्यूनतायें नज़र आती हैं। यह कोश दो सौ त्रेसठ पृष्ठ का है और अब अप्राप्य है।

इस पुस्तक में कहावतें रोमन लिपि में दी गई हैं और इन की व्याख्या अंग्रेज़ी में की गई है।

इस कोश के कोई पचास वर्ष पश्चात् 1933 ई० में आनन्द कौल बामज़ई (इतिहासकार) ने कश्मीरी लोकोक्तियों से सम्बन्धित तीन लेख "द इण्डियन

एण्टिकोयरी" में प्रकाशित कराये। कहावतों के बारे में एक संक्षिप्त भूमिका देकर इन लेखों में 155 कहावतें और पन्द्रह शिक्षादायक पद्य दिये गये हैं। कहावतों की व्याख्या अंग्रेज़ी भाषा में की गई है।

कश्मीर के सुप्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता 'मेसर्ज़ गुलाम मुहम्मद नूर मुहम्मद, महाराज गंज़ श्रीनगर' की ओर से 1947 ई० से पूर्व कश्मीरी कहावतों की दो छोटी पुस्तिकायें प्रकाशित हुईं। इन में कश्मीरी के अतिरिक्त उर्दू और फारसी की कुछ कहावतें भी दी गई हैं। प्रत्येक पुस्तिका का मूल्य मात्र एक आना है। पृष्ठ संख्या, दोनों की 32 बनती है और इन में कुछ अश्लील बातें भी सम्मिलित हैं। लिपि की न्यूनतायें मौजूद हैं और प्रकाशन तिथि अंकित नहीं की गई है।

1947 ई० के पश्चात् कश्मीरी पत्रिका 'गुलरेज़' में कश्मीरी कहावतों की संक्षिप्त तालिका दो अंकों में दी गई है। इसी प्रकार 'कश्मीर टीचर्स एसोसियेशन' के मासिक प्रकाशन—'उस्ताद' में भी एक बार मुहावरों की एक संक्षिप्त तालिका प्रकाशित हुई है। 1947 से पूर्व 1882 ई० में डॉ० निव ने 'कश्मीरी प्रावर्ब्स' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित कराई थी किन्तु मुझे यह पुस्तक उपलब्ध न हो सकी अत: इस के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार सुदर्शन काश्कारी ने भी 'द विट आफ कश्मीर' में कुछ कहावतें दी है किन्तु यह पुस्तक भी अब अप्राप्य है।

प्रोफेसर महीउद्दीन हाजिनी ने 'कॉशरि नसरॅच किताब'—कश्मीरी गद्य की पुस्तक में कुछ लोकोक्तियां एकत्र की हैं। उनकी ही दूसरी कृति 'मक़ालात' में कुछ 'तलमीहात'[1] इकट्ठा किये गये हैं।

1984 ई० में बरकात निदा की एक पुस्तक छपी है "नमनमथ कथह"—निन्यानवे कथायें"। इस में कुछ कश्मीरी लोकोक्तियों को इन की पृष्ठभूमि सहित अंकित किया गया है। इस पुस्तक की छपाई आकर्षक नहीं, फिर भी इस दिशा में यह कार्य सराहनीय है।

कश्मीरी कहावतों पर शोध दृष्टि डॉ० जवाहर लाल हण्डू के लोक-साहित्य सम्बन्धी कार्य में मिलती है। इन्होंने इस दिशा में विशेष काम किया है। हाल ही में कश्मीरी और हिन्दी कहावतों की तुलना पर शोध कार्य डॉ० एस० के० रैना द्वारा सम्पन्न हुआ है। डॉ० रैना अलवर में कार्यरत हैं। इतना होने पर भी इस क्षेत्र में वैज्ञानिक तथा भाषा वैज्ञानिक ढंग से काम करने की काफी गुंजायश मौजूद है। गांव-गांव जाकर कई भूली कहावतों तथा जीवित लोकोक्तियों को एकत्र किया जा सकता है। हमारे गांव में एक कहावत है 'हयात दोॅब्युन चोंग'—हयात धोबी का चिराग़—किन्तु मैंने इस कहावत को

---

1. किसी ऐतिहासिक अथवा फरज़ी घटना की ओर संकेत-सूचक।

कहीं अंकित नहीं पाया और अब बिजली के आने से यह कहावत मृतप्राय हो गई है। इस कहावत के पीछे एक धोबी का घर है। गृहस्थी ग़रीब तो थी ही किन्तु घर के मालिक की बातों पर उसकी बहुएं तुरन्त ध्यान नहीं देती थीं। जब वह घर वालों को चिराग़ जलाने के लिये आवाज़ देते थे, तो उस की बात पर घन्टों बाद अमल होता था और शाम को जलने वाला चिराग़ रात के पिछले पहर में जलता था। अत: यदि कोई व्यक्ति किसी बात पर देर से कार्य करता, तो उसे कहा जाता था—काम इस प्रकार करते हो जैसे हयात धोबी के घर में चिराग़ जलता है। इसी प्रकार न जाने कितनी लोकोक्तियां प्रत्येक गांव की धरती में छिपी होंगी या मर चुकी होंगी।

कश्मीरी कहावतों पर संस्कृत, फारसी, उर्दू तथा पंजाबी का प्रभाव परिलक्षित होता है। पंजाबी कहावतों पर तो कश्मीरी प्रभाव बिलकुल स्पष्ट है किन्तु यह बात हम कुछ आगे चलकर करेंगे।

कश्मीरी कहावतों की आत्मा में झांकने से यह बात स्पष्ट होती है कि इन पर ऋतु, भूगोल, पर्वतों की विशिष्ट-संस्कृति, सामंती व्यवस्था तथा भारतीय तथा मध्य एशियायी परिवेश का काफी प्रभाव पड़ा है।

इन कहावतों में लोक जीवन के सभी पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें लोगों के सुख-दु:ख, क्रोध का प्रदर्शन (शोषकों के प्रति), आशायें और हंसी के अतिरिक्त शाश्वत-सत्य झलकता नज़र आता है। इन में सम्प्रदायवाद से घृणा, कश्मीरियों की अतिथि पूजा, इन पर आने वाली दैवी-आपदाओं तथा कई ऐतिहासिक घटनाओं का संक्षिप्त किन्तु मार्मिक दिग्दर्शन मिलता है। इन में पंचतन्त्र की कहानियों तथा कई ऐतिहासिक व्यक्तियों के बारे में ज़िक्र मौजूद है। अत: यह जन जीवन का वह मुकुर है जिस में अतीत की कई मीठी और कड़वी स्मृतियां शब्दबद्ध की गई हैं और यही कारण है कि इनको कश्मीरी बोलने वालों ने अपने मन में सुरक्षित रखा है। इन को अच्छी प्रकार खंगालने से लोक-संस्कृति का क्रमिक विकास आँखों के सामने जीवित हो उठता है।

इससे पूर्व कि हम इस सम्बन्ध में उदाहरण दें, अन्य भाषाओं की कहावतों के प्रभाव की बात की जाए। जहां तक कश्मीरी भाषा का सम्बन्ध है यह कभी भी दरबारी भाषा न बन पाई। पैशाची का युग हो अथवा संस्कृत का फैलाव, फारसी की हुकुमरानी हो अथवा उर्दू का 'ज़माना', कश्मीरी को सरकार से वह सब कुछ न मिला जिसकी यह हक़दार थी। अत: अन्य भाषाओं के सरकारी आसन पर आने से कश्मीरी का प्रभावित होना अनिवार्य था। फारसी लोकोक्तियों के प्रभाव के कुछ उदाहरण लीजिये :—

ज़े रोग़न खुर्दने गर्बह न नालम।
ज़े दुम जुमबन्दनश आशुफतह आलम॥

अर्थात् बिल्ली के घी खाने से आदमी उतना दुखी नहीं होता जितना कि उस की दुम झुलाने से। कश्मीरी में हू-ब-हू यही कहावत इस प्रकार प्रचलित है :—

'ब्रारि हँदि ग्यब ख्यनह घुनह त्यूत,
लगान, यूत तंदि लॅट गिलनावनरु।'

इसी प्रकार :—

'गर्बह सिस्कीं अगर परदाश्ते,
तुखमे गुंजक अज़ जहां बरदाश्ते।'

अर्थात् यदि बिल्ले के पर निकलते तो झीलों में मुर्गाबियां कहां रहतीं। और इसी का कश्मीरी रूप :—

'ब्रॅरिस ऐ पखंह येन,
सरन रोज़न न पछिन।'

एक और उदाहरण देकर उर्दू की ओर चलें।—खुदा पंज अंगुश्त यक्सां न कर्द—'अथस मंज़ छनह पाँच्वे ओंगजि हिशि।' हाथ में पांचों उँगलियाँ एक जैसी नहीं होतीं।

1. उर्दू — जान है तो जहान है
   कश्मीरी — ज़ुव ओॅर जहान ओॅर
2. उर्दू — दरिया में रह के मगरमच्छ से बैर
   कश्मीरी — 'अख ख्नजस सूति बतह ख्योॅन, व्ययि सिनिस कुन अथह न्युन'
3. उर्दू — साँच को आँच नहीं
   कश्मीरी — 'पज़िस् घुनह ज़गल'
4. उर्दू — दरवाज़े पर बरात देखो तो दुल्हन के कान छेदो
   कश्मीरी — 'नारह विज़ि क्रूर खनुन'
5. उर्दू — अंगूर खट्टे हैं।
   कश्मीरी — पिलिम न तँ च्वकी गॉम

कश्मीरी कहावतों का प्रभाव किस प्रकार पंजाबी पर पड़ा है इसके यद्यपि बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं किन्तु लेख का शीर्षक सामने रखते हुए थोड़े से उदाहरण देना उचित रहेगा—

1. पंजाबी —अग लगियां खूह खनना
   कश्मीरी —नारह विजि क्रूर खनुन
   हिन्दी अर्थ—कोई काम बहुत जल्दी में करना

2. पंजाबी —अदरह खल करनां
कश्मीरी —अदरह खल करञ
हिन्दी अर्थ—बिगाड़ना

3. पंजाबी —अर सरे करने
कश्मीरी —अरह सरह करनि
हिन्दी अर्थ—बेकार समय गंवाना

4. पंजाबी —बगू वटियां
कश्मीरी —बगू वटुन
हिन्दी अर्थ - बिस्तरा गोल करना

5. पंजाबी —शाल जमादारी
कश्मीरी — शालह जमादॉरी
हिन्दी अर्थ—वह कार्य अपने ऊपर लेना जिस में आदमी स्वयं फंस जाये।

इसी प्रकार निम्नलिखित कहावतें कश्मीरी तथा कश्मीर घाटी के पंजाबी बोलने वाले दोनों ही उपयोग में लाते हैं :—

1. हून वोरान कारखानह पकान
(कुत्ता भौंकता है पर कारवां चलता है)

2. ऐ ज़र यि ख्वश करी ति कर
(धन, जो चाहे करे)

3. आसुन वथ हावान नासुन मंद छावान
(पैसा पास हो तो मार्ग स्पष्ट दिखाई पड़ता है किन्तु हाथ खाली हो तो आदमी लज्जित होता है)

4. 'पर गगुर करान गर गगरन लार'
(पराया चूहा घर में रहने वाले चूहों को भगाये)

इसी प्रकार डोगरी और कश्मीरी की इन कहावतों वा मुहावरों का साम्य भी देखने योग्य है :—

1. डोगरी —ऊना छलकै दूनां
कश्मीरी —छरई मॅट छि मज़ान
हिन्दी —अधजल गगरी छलकत जाय।

2. डोगरी —सांझे बव्वै, कु'न कोई जालै कु'न कोई दव्वै
कश्मीरी —शराकतॅच ल्यज छि फुटमॅच चुवतिस प्यठ
हिन्दी —सांझी मां गंगा न पावे

3. डोगरी —कजा राजा भोज, कजा गंगू तेली
कश्मीरी —कति राजा भोज तह कति गंगू तीली
हिन्दी —कहां राजा भोज और कहां गंगू तेली

यहां यह कहना उचित रहेगा कि कश्मीरी और डोगरी कहावतों के तुलनात्मक अध्ययन से इस दिशा में काफी काम हो सकता है। तारा स्मैलपुरी के अनुसार, उन्होंने ग्यारह हज़ार डोगरी कहावतें और मुहावरे इकट्ठा किये हैं। कश्मीरी कहावतों की पूरी संख्या इस लिए बताना कठिन है कि कश्मीरी कहावतों को पूर्ण रूप से एकत्र नहीं किया गया है। मेरे विचार में हमें किसी भाषा की ठेठ कहावतों को ही अधिक बुनियाद बना कर चलना चाहिये। अब कुछ कश्मीरी कहावतों की पृष्ठभूमि को लेकर विषय को असली बात की ओर मोड़ लें। जब कोई किसी के किये उपकार पर आभार प्रकट न करे तो यह कहावत कही है :—

खोॅतुस ति पानै
वोॅथुस ति पानै

अर्थात् मैंने स्वयं ही सब कुछ किया है आप का एहसान कोई नहीं। कहते हैं कि एक गोजर एक लम्बी चीड़ की टहनियां काटने के लिये उस पर चढ़ा। जब वह वृक्ष के ऊपर वाले भाग पर पहुंचा तो चिल्लाने लगा—लोगों मुझे बचाओ, मैं गिरा। यह सुन कर कुछ लोग एकत्र हुए उन्होंने गोजर से कहा—खान खुदा के लिए कुछ नियाज़ का प्रण करो। इस पर उसने भैंस नियाज़ के लिये रख ली। जब वह कुछ नीचे उतरा तो उसका भय कुछ कम हो गया और उस ने मन में कहा, नहीं भैंसे के बदले गाय ठीक है। जब वह कुछ और नीचे उतरा तो कहने लगा, चलो बकरी ठीक रहेगी। चंद गज़ और नीचे उतरा तो मुर्गी पर उतर आया। जब वह भूमि पर ठीक प्रकार से आ गया तो कहने लगा—काका मैं चढ़ा भी स्वयं ही और उतरा भी स्वयं ही—अब नियाज़ किस बात का।

इस लोकोक्ति में गोजरों के कष्टपूर्ण जीवन और उनकी गरीबी का आभास मिलता है।

एक सरकारी अधिकारी के घूस खाने के कृत्य को विनोद के रूप में इस प्रकार सुरक्षित किया गया है—"गॉव ख्यव दस्तार" अर्थात् गाय पगड़ी खा गई।

कहा जाता है कि एक तहसीलदार काफी घूस लेता था। इसके पास दो आसामियों का एक केस आया। इनमें से एक ने तहसीलादर को खुश करने के लिये एक पगड़ी दी। तहसीलदार ने उसे विश्वास दिलाया कि फैसला

उसी के हक में होगा। कुछ दिन के पश्चात् दूसरा धड़ा एक गाय ले आया, और केस का फैसला उसी के हक में हो गया। जब पहले व्यक्ति ने इस सम्बन्ध में शिकायत की तो अधिकारी ने कहा कि—"उनकी गाय तेरी पगड़ी खा गई।" इस प्रकार की लोकोक्तियों से लोगों की परवशता साफ नजर आती है।

लोगों के अभिज्ञ, अथवा मूर्ख होने के सम्बन्ध में कश्मीर के एक गांव 'मोॅतलहोम' (मातुलाश्रम) के सम्बन्ध में कई कहावतें प्रसिद्ध हैं। आज इस गांव के रहने वाले काफी प्रगति कर गए हैं और खासे बुद्धिमान हैं किन्तु इतिहास ने किसे मुआफ किया है। इस गांव के अतीत में सादा लोगों का जीवन कितना विचित्र था इस बारे में कुछ हास्यास्पद कहावतें चली आ रही हैं और आज की स्थितियों पर लागू की जाती हैं।

इसी गांव के एक घर में चूल्हे में शहतूत के वृक्ष की लकड़ी जलाई गई। इस लकड़ी का अंगारा चमक रहा था। यह रात्रि में कुछ और प्रज्ज्वलित हुआ तो पति ने पत्नी से कहा—'लगता है चूल्हे में कोई माणिक्य है।' पत्नी ने कहा—"हां मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है।" दोनों उठ कर इसे ऊन की पेटी में सुरक्षा के लिए रख आते हैं। रात को लकड़ी की पेटी में रखे ऊन ने आग पकड़ ली और इस प्रकार मकान में आग लग गई। किन्तु दोनों पति-पत्नी को, न मकान जलने का दुःख था और न दूसरी चीज़ों के नष्ट होने का, यदि वे दुःखी थे तो केवल इसलिए कि इस आग में उनका माणिक्य जल कर राख हो गया था। यह कहानी सत्य है या नहीं किन्तु कहावत का प्रयोग अभी तक जारी है।

इसी गांव से सम्बन्धित एक और कहावत भी ऐसी है कि मुंह से स्वतः हंसी फूट पड़ती है :—

दाह गज़ सनि क्याह, दाह गज़ ब्वगनि क्याह (अर्थात्—दस गज़ ऊपर, दस गज़ नीचे, एक बराबर)

कहते हैं कि गांव का एक व्यक्ति सफेदे की टहनियां काटने के लिए उस पर चढ़ा। किन्तु उसने टहनियों को नीचे से ऊपर की ओर तराशना आरम्भ किया जब कि उसे ऊपर की शाखाओं को तराशते-तराशते नीचे आना चाहिये था। किन्तु अब वह इस गलती के कारण ऊपर से नीचे आने में असमर्थ हो रहा था। इस पर यह व्यक्ति चिल्लाने लगा—'मुझे बचाओ, मुझे बचाओ।' सब ने सलाह की और गांव के मुखिया को पकड़ लाये। मुखिया ने कुछ देर अपने मस्तिष्क पर बल देने के बाद कहा रस्सी फैंक कर इसे नीचे उतारो। लोगों ने ऐसा ही किया और वह व्यक्ति नीचे गिर कर मर गया। जब उससे

इस सम्बन्ध में पूछा गया तो उसने कहा—मैं ने एक कूएं से जो दस गज़ गहरा था एक व्यक्ति को बाहर निकलवाया था, वही तरकीब मैं इस पर भी आज़मा रहा था। जब लोग आज भी गलत कार्य करते हैं तो यह कहावत दोहराई जाती है।

पंचतन्त्र के आधार पर बनी एक कहानी से कहावत बनी है—

'वन वन करनह छु वन नशान'

अर्थात् बार-बार कहने से जंगल भी नष्ट होता है। अंग्रेज़ी में कहावत है, इसी जैसी—

'Give the dog bad name and hang him'. किसी को लगातार बुरा कहते जाओ और उसे फांसी दे दो।

कश्मीरी कहावत है कि एक किसान एक बछड़े को लिये जा रहा था। मार्ग में उसे कोई व्यक्ति मिला और किसान से कहा यह कुत्ता कहां से लाये हो। किसान यह सुन कर हंसा और चलता गया। कुछ देर चलने के पश्चात् उसे एक और व्यक्ति मिला और कहा कैसा सुन्दर कुत्ता खरीद लाये हो! किसान ने एक बार बछड़े को देखा और सोचने लगा कि यह लोग इसे कुत्ता क्यों समझ रहे हैं। आगे चल कर उसे एक और व्यक्ति मिला जिस ने वही बात फिर दोहराई। किसान अब अचम्भे में पड़ गया। उसने इस व्यक्ति से जो आयु में बड़ा था पूछा—"क्या सचमुच में यह कुत्ता ही है? वयोवृद्ध ने उत्तर दिया—"हां भाई यहां के कुत्ते ऐसे ही होते हैं। इसे छोड़ दो, नहीं तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे।" इस पर किसान ने बछड़े को आज़ाद कर दिया और तीनों जंगली चोरों ने उसे हथिया लिया। पंचतन्त्र की कथा में किसान के स्थान पर ब्राह्मण आता है और बछड़े की जगह भेड़।

अतिथियों का आना जैसे आज खटकता है वैसे ही तब भी खलता था जब लोग बड़ी कठिनाई से अपना गुजारा चला लेते थे। इसी सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध कश्मीरी कहावत है—

'वॅछिस लॉगिथ पछिस जन'

(अर्थात् बछड़े की आड़ में अतिथि को)

एक दिन एक व्यक्ति शहर में रहने वाले एक मित्र के पास गया। चाय पानी पीकर वह सुसताना ही चाहता था कि आंगन में एक बछड़े की आवाज़ आई। पत्नी जो मेहमान के आने से तंग पड़ गई थी, बछड़े से कहने लगी—जाकर मर कहीं। अभी से सेहन में आकर बैठ गया कमबखत।

अतिथि को संकेत मिला और वह गृहिणी का यह वाक्य अधूरा ही सुनकर

भाग चला। 'अभी तो देर क्या हुई है, अभी तो आदमी बम्बई से लौट कर आ सकता है।

प्रसिद्ध हिन्दी अथवा उर्दू कहावत "दूध का दूध और पानी का पानी", कश्मीरी में—द्वदुक द्वदस तॅ आबुक आबस—आज तक खूब चलती है। इसके पीछे जो कथा आती है वह संक्षेप में इस प्रकार है—

एक दूध बेचने वाला दूध में आधा भाग पानी मिलाता था। एक दिन उसने इकट्ठा किये धन को थैले में डाला और एक बड़ी गाय लेने चल पड़ा। रास्ते में एक वृक्ष के नीचे कुछ देर बैठ कर उसे नींद आ गई। जब वह सो कर उठा तो थैला गायब। ऊपर देखा तो थैला बंदर के हाथ में लटक रहा था, जो उस में से एक रुपया नदी में और दूसरा नीचे गिरा रहा था। बेचारा दूध बेचने वाला दु:खी होकर यह सब कुछ देख रहा था। जब अन्त में थैला खाली हुआ तो गाय खरीदने के लिए साथ लिए हुए रुपयों का केवल निसफ भाग बच चुका था। वापस आकर उसने अपनी पत्नी को सारी बात सुनाई और इस पर कहावत चल निकली। यह कथा भी बाहर की ही प्रतीत होती है।

कुछ ठेठ कश्मीरी कहावतें हंसने पर विवश करती हैं—

'चोचि वरि मंज़ह नेरया अंज़'

(क्या एक रोटी से मुर्गाबी निकल सकती है) इस कहावत के पीछे एक गंदे नानवाई की कथा है जिसकी रोटी से एक जूं निकल आई थी। छोटी रकम पर अधिक लाभ मांगते समय अथवा खाने की किसी वस्तु से कोई बाल आदि निकल आये तो यह कहावत दोहराई जाती है।

मुल्लाओं और आखूनों के उस जीवन के सम्बन्ध में जो उनके मुरीदों के प्राय: विरुद्ध होता है कई कहावतें कश्मीरी में प्रचलित हैं—

1. 'काह तॅह काह गयि ज़तोवहु चॊचि'
   (ग्यारह और ग्यारह जोड़ कर बाईस रोटियां)
2. 'मलन कॅर गांठ हलाल'
   (मुल्ला ने चील को हलाल बताया)
3. 'मलह ख्ययि कलॅह-नॊन तथ छुनह केंह'
   (मुल्ला यदि नंगे सिर खाये तो कोई आपत्ति नहीं)
4. 'न पीर अंज़स न मंज़स'
   (किसी बात से सम्बन्धित न होने पर कहा जाता है)
5. 'ओॅखुन सॉबनि ज़र्दी'
   (जब किसी व्यक्ति को कोई बात जो वास्तव में सत्य न हो, प्रभावित करे, तो उस समय इस कहावत को प्रयोग में लाते हैं)

कश्मीर के प्रसिद्ध बादशाह (बड़शाह) से सम्बन्धित अत्यन्त विचित्र कहावत है—

'ज़रि बूज बहि वॅहरि बड़शाद मूद'

(बहरे ने बारह वर्ष के पश्चात् सुना कि बड़शाह मर चुका है।)

1420-70 ई० तक कश्मीर पर राज करने वाले ज़ैनुल आबदीन को लोगों की समस्याओं की चिन्ता रहती थी। कमराज़ (उत्तरी कश्मीर) के एक इलाके में पानी पहुंचाने की चिन्ता बड़शाह को परेशान कर रही थी। उसने एक फकीर से इस कठिनाई को दूर करने के लिए सलाह मांगी। फकीर ने कहा कि फलां नदी के उद्गमस्थान पर पीले चावल बांटो। वहां उद्गम का स्वामी आ उपस्थित होगा। उसी से पानी देने की प्रार्थना करो। बादशाह ने यही किया। जल-स्वामी ने बादशाह से कहा कि उस स्थान तक पानी एक शर्त पर पहुंच सकता है कि पानी उतनी ही देर तक चलता रहेगा जितनी देर अमुक बहरा बडशाह के मरने का समाचार सुने। बादशाह ने शर्त मान ली और जल स्वयं इच्छित स्थान पर पहुंच गया। बारह वर्ष तक बहरे ने बड़शाह के मरने की खबर न सुनी। किन्तु बारह वर्ष के पश्चात् जब उसने यह समाचार सुना तो उस इलाके में जल का चलना बन्द हो गया। यदि कोई व्यक्ति कोई विशेष समाचार देर से सुने तो ऐसे मौके पर यह कहावत कही जाती है।

कश्मीरी कहावतों को कई जानवर उठाये लिये चलते हैं इन में गीदड़, शेर, रीछ, कुत्ता, गाय आदि आते हैं। पक्षियों में कौआ, चील आदि, वृक्षों में तूत, चिनार, अखरोट आदि सम्मिलित हैं।

कामदेव, मिट्टी का माधव, लुकमान, अफलातून (Plato) राजा हर्ष, प्रसिद्ध राजा 'जम' ('जामे जम-जम का प्याला) नमरुद आदि के नाम भी कई कश्मीरी लोकोक्तियों से सम्बन्धित हैं।

कुछ लोकोक्तियों में कारीगरों के जीवन की झलक भी मिलती है।

कश्मीर के विचित्र पशु 'हांगुल' को एक कहावत में सुरक्षित किया गया है। कहावत है—

हांगलो करयो शुपि सूति वाव्
नफहूक छु लस्लेह गारह मो पाव्।

ऐ 'हांगुल' (बारहसिंगा) मैं छाज से तुझे हवा खिलाऊं। लाभ की बात छोड़ो, हमें घाटे से बचाओ। यह कहावत उस समय काम में आती है जब किसी कार्य में कोई विशेष लाभ प्राप्त होने की आशा न हो। इस कहावत के पीछे किसी सरकारी-रखाव से भागे हुए एक बारहसिंगे की कहानी है जो भागा-भागा किसी गांव में पहुंचा था। गांव के सब लोग उसे राजा के पास ले गये ताकि

उन्हें कुछ इनाम प्राप्त हो। किन्तु सरकार ने उन्हें इनाम देने की बजाय एक हाकिम से दूसरे के पास भिजवा कर परेशान कर दिया और अन्त में उन्हें बारहसिंगे को पुन: उसी 'रख' में पहुंचाना पड़ा जहां से वह भागा था। इस पर इस कहावत को जन्म मिला।

कहावतों के पीछे दी हुई सभी कहानियों के लिए एक पुस्तक चाहिये। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि कश्मीरी कहावतों में यहां का इतिहास छिपा है और छिपी हैं लोक जीवन की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विडम्बनाओं और आशाओं की एक लम्बी गाथा जिससे कश्मीर के विभिन्न युगों की सांस्कृतिक धरोहर के पन्ने पलट कर बहुत कुछ सामने आता है। यह कहावतें एक ऐसा इतिहास प्रस्तुत करती हैं जिसे साधारण, सीधे-सादे और कठिनाइयों से लड़ते हुए लोगों ने लिखा है। कहावतों का यह इतिहास आने वाले युगों में कैसा होगा, कौन जाने ?

कश्मीरी पहेलियां

लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोकोक्तियों, कहावतों तथा मुहावरों के अतिरिक्त पहेलियों का एक विचित्र संसार भी दृष्टिगोचर होता है। पहेलियां प्रत्येक भाषा की सम्पत्ति हैं। जहां तक कश्मीरी पहेलियों का सम्बन्ध है, इनमें भाषा गठन, रचना-कौशल और साहित्यिक व्यवहार स्थान-स्थान पर नज़र आता है। कल्चरल अकादमी श्रीनगर द्वारा लोक-गीत तथा लोक कथाओं के जो संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनमें कुछ पहेलियां भी सम्मिलित की गई हैं।

कश्मीरी पहेलियां एक साथ अलग से एकत्र करके अभी तक प्रकाश में नहीं आई हैं। अत: इनकी संख्या के सम्बन्ध में भी कुछ कहा नहीं जा सकता। हां यह बात स्पष्ट है कि पहेलियों का जन्म अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है। इनके जन्म का कारण है मनोरंजन और दिमागी कसरत। यही कारण है कि आधुनिक युग में हमें पहेलियो का गठन बहुत ही कम मिलता है।

कश्मीरी पहेलियों पर जब दृष्टि पड़ती है तो इन में उन्हीं वस्तुओं का प्रयोग नज़र आता है जिन का सम्बन्ध मनुष्य की उन वस्तुओं से है जिन का आविष्कार उसने खेती-युग में किया था। इन में कश्मीरी परिवेश स्पष्ट झलकता दिखाई देता है। नीचे दिये गए शब्द इस कथन को स्पष्ट करेंगे :—

चावल, मिर्च, अबालील, पनचक्की, पशुओं को बांधने की रस्सी, कुदाल, अखरोट, दही बिलोना, पर्वत, चन्द्र, साग, पक्षी, चर्खा, दीप, धुआं, बर्फ, स्यूल, जल, कलम, तारे, हल और बैल, मिट्टी की हंडिया, मूंग, चादर (लूई), तैरना, क़ब्र इत्यादि।

इन पहेलियों में कल्पना की उठान, शब्द-चयन तथा सुन्दर तारतम्य साफ़ नज़र आता है। इन में जो जीवन चित्रित हुआ है वह प्रायः ग्रामीण है, जिस से ऐसा भास होता है कि इनका जन्म भी देहात में ही हुआ है।

कई पहेलियों में शब्दों की तुक-बन्दी भी मौजूद हैं । आइए कुछ पहेलियों से इस कथन की पुष्टि करें ।

1. हेरि वोॅथ पंडित वोॅज़ुल जामह गेडिथ

इसमें पंडित तथा गंडिथ शब्द एक छन्द में प्रयुक्त हुए हैं । पहेली का अर्थ है—

आया ऊपर से पंडित
पहने है वह लाल पोशाक

पहेली का संकेत लाल मिर्च की ओर है। पहेलियों का उत्तर देने के लिये कश्मीर में एक विशेष ढंग चला आ रहा है। पहले कोई पहेली बताता है । यदि उत्तर देने वाले ने ठीक-ठीक स्पष्टीकरण किया तो अच्छा नहीं तो पूछने वाला कहता है कोई गांव दे दो। तदनन्तर सुनने वाला कोई भी गांव दे देता है । गांव का नाम सुनने के पश्चात् पहेली का उत्तर चाहने वाला व्यक्ति कहता है :—

फलां गांव पर मैं राज करूंगा। मैं और राजा मिश्री खायें, तू और कुत्ता हड्डियां तोड़े। गंदा होवे तू । सात यारबलों (पनघटों) से तू धन धो ले आया तू ?। और फिर पहेली का मतलब बताया जाता है।

इससे स्पष्ट होता है कि इन पहेलियों का सम्बन्ध सामन्ती-युग से ही है। चन्द्र को जिस वस्तु से एक कश्मीरी पहेली में उपमा दी गई है वह है धान के भूसे से बना एक खाद्य पदार्थ जिसे ''यॉज'' कहते हैं। पहेली है—

बालस प्यठ कोॅम 'यॉज'
न पिल्यस चॉनि मोज
न पिल्यस म्याञ मोज

अर्थात्— **पर्वत पर भूसे की रोटी**
तेरी माता छू न पाये
मेरी माता छू न सके

स्यूल के पौदे से सम्बन्धित एक अत्यन्त सुन्दर पहेली की रचना न जाने कब हुई है। पहेली है—

''अखत पनचे चादरे मोखतह पंदाह लछ
या दिम गामह लच नतह थवं पतह यछ''

सुन्दर धागे की चादरिया, मोती पन्द्रह लाख
या दो गांव लाख, नहीं तो यक्ष लगाऊं तेरे पीछे

पहेली में यक्ष पीछे लगाने से ऐसा भान होता है कि यक्ष जाति अवश्य कश्मीर में रहती थी और अन्य जातियां उन से डरती थीं। गनहार (स्यूल) के पौधे का इस प्रकार का वर्णन कितना रुचिकर है।

धुएं के सम्बन्ध में बनी एक पहेली नीचे दी गई पंजाबी पहेली से अच्छी तरह मेल खाती है :—

मां जमी न जमी
पूत छत नाल लमके

और कश्मीरी पहेली है—

ज्योंही पाया जन्म
चढ़ा तीजी मंजिल पर वह

एक अंग्रेजी पहेली है—

Ivory-box without a lid
Golden-treasure inside is hid.

यह पहेली अंडे पर आधारित है और कश्मीरी में ठीक ऐसी ही पहेली है, 'किन्तु कहने का ढंग विलक्षण है—

सोॅनह सॅजि कयंजे रोपह सुंद ठान
युस तथ तुले सु पहलवान

अर्थात् —

सोने की 'किंजी' पर
चांदी का है ढक्कन
वीर वही जो उसे उठाये

अण्डा यदि दोनों सिरों से ज़ोर से दबाया जाये तो वह कदापि नहीं टूटता। इसी प्रकार तारों भरी रात का वर्णन एक विचित्र पहेली से किया गया है—

'कालह वोॅवुम मोंगह डलाह
सुबहन न कुनी'
मूंग की खेती सायं की
प्रातः उसे देखा न कहीं

दही बिलोने और छाछ से मक्खन निकालने की क्रिया का वर्णन एक और तरीके से इस पहेली में दर्शाया गया है—

'पीर न्यचू यीरह् वसान
सॅदरस् बसान छांटि
दंदह् मालन श्रोॅन करान
शीनस वरान मानि,

अर्थात्—पीर-पुत्र एक बहता जाय
तैरे बीच समन्दर के
बाजे दांत की मालायें औ,
हिम-मानियां करे एकत्र

मंदानी को पीर-पुत्र से, मटके को समुद्र से, दही बिलौने की आवाज़ को दांत बजने की आवाज़ से और मक्खन इकट्ठा करने को हिम की मानियां बनाने से उपमित करना एक कवि का ही काम हो सकता है।

झाड़ू से सम्बन्धित कश्मीरी पहेली नीचे दी गई अंग्रेज़ी पहेली से मेल खाती है—

Goes all over the floor in the day
and stands in the corner at night.

कश्मीरी पहेली है—

"ओरह् योरह् यिवन नचि्थ
ब्यहन बरस तल"

हिन्दी— यहां वहां से घूम के आये
बैठे द्वार समीप

चर्खे से सम्बन्धित पहेली भी उत्तम बन पाई है। पहेली है :—

"रंग-न-रंगी जानावारा मीम रंगी पन
रजि लमन बॉजिगारा तम्युक माने वन"
रंग-ब-रंगा पक्षी एक
धागा मेम के रंग का
खैंचे धागा जादूगर इक
इस का अर्थ बता

पनचक्की से सम्बन्धित पहेली, कितनी हास्यास्पद है—

'बर दिथ खर नचन'

अर्थात्— नाचे गधा, द्वार है बन्द ।

अन्त में कुछ पहेलियाँ और उनका हिन्दी अनुवाद दिया जाता है :—

1. 'छोॅटुई मोॅटुइ कबिर कोन
पाँचौ बायौ रटिथ चोन,
छोटा मोटा अन्धा एक
पांच भाइयों ने लिया घसेट (चावल का लुक़मा)

2. 'बालस प्यठ मिनि-मॅर ओॅश त्रावन'
रोये हिरनी पर्वत पर (पीच निकालने की क्रिया)

3. 'बालस् प्यठ त्रेलह-कुज
स्व व्वज़ॅज नार
अख हना ख्यमह ही
स्व ट्यठ ज़हार'
पर्वत पर है सेब का पौदा
लालो-लाल है जो
खाता इस से सेब एक
है वह कड़ुआ सारा (मिर्च का पौधा)

4. 'हेरि वॅछ हॅट बर-हंगन रॅट'
आई ऊपर से पटिया
पकड़ा उसको द्वार-शिखा ने (कंघी)

5. 'अस्मॉनि पकन कक्काया
जंगन वलिथ किरमाया
स्व कस म्यॉन पिर-बाया'
उड़े शून्य में पक्षी एक
पंजों में पहने वस्त्र विशेष
पीर-पत्नी वह मेरी कौन ? (अबाबील)

6. 'मूदयुत जिन्दस थफ कॅरिथ'
मुर्दा पकड़े जीवित को । (पशु बांधने की रस्सी)

7. 'मूदिमॅतिस हॅसितिस जिन्दै अन्दरम'
मुर्दा हाथी की जीवित आंतें (मकान)

8. 'शाल चाव गोॅफि मॅज लॅट छस ननी'
गीदड़ घुसा गुफा में पर,
पूंछ है उस की नंगी (आग निकालने का कड़छा)

9. 'हेॅरि बोॅथ जेदह शाल जेदॅह त्रॉविथ'
ऊपर से उतरा गीदड़
फैंक फटे हुए कपड़े (अखरोट)

10. 'लटि रोॅस म्यवह क्याह ?'
दुम बिना मेवा कौन ? (नमक)

11. 'योरॅह गछ़न असन असन
तोरह यिवन वदन वदन'
हंसता हंसता जाये
रोता रोता आये (घड़ा, कलष)

12. 'शुफतह शुफतै ह्यंद व्यंद
श्राकि सूती कपटन
ब्यथि त्युथइ सपदन'
पक्का पक्का इक तरबूज़
काटो खन्जर से उसको
फिर वैसे का वैसा हो (क़बर)

13. ''दगि रुस्तॅइ रगि पयल''
बिना दरद के रग पर फोड़ा (गिल्लर)

14. ''छोटुई मोॅटुई कदावार
ऋख छु दिवन ज़ोरावार''
छोटा मोटा क़दावार
चीखे जब तो जोरावार (बन्दूक़)

15. ''कलह त्रे तॅ जंग दाह''
तीन शिर और टांगे दस (हलवाहक और बैल)

16. “अन्दर कुठिस गंदर काह
तिम छि बिहिथ ताह ब ताह”
भीतर कोष्ठ के बेटे ग्यारह
बैठे हैं सब तह पर तह (मुंह)

17. ‘सर हो॑ख त पींच कॉञ मो॑थि
(सर सूखे और सांप मरे) (दिया बाती)

18. “बालस प्यठ मिनि-मॅर लॅट त कॉर मिलविथ
योरह खॅच़स पींचह कॉञ तोरह वॉजिन गिलविथ”
पर्वत पर एक हिरनी बैठी
दुम और गर्दन एक किये
चढ़ा छोटा-सा पक्षी एक
पकड़ हाथों से लिया उतार (ताला और ताली)



डोगरी लोक-कथाएं—विश्लेषण तथा अध्ययन की सीमाएं

□ डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स

भारत के अन्य प्रदेशों के समान डोगरी लोक-साहित्य की समृद्ध विरासत पर भी हमें गर्व है। यह बहुमुखी तथा बहु-आयामी लोकसाहित्य समय-समय पर डुग्गर के लोक-मानस से उद्भूत होकर कुछ वर्ष पहले तक मौखिक परम्परा से ही सुरक्षित रखा जाता था. परन्तु अब धीरे-धीरे इसके संकलन, संरक्षण, सम्पादन तथा आधुनिक पद्धति से छिट-पुट रूप में इसके अध्ययन की ओर कुछ उत्साही विद्वान् एवं लेखक प्रवृत्त हुए हैं। तारा स्मैलपुरी जैसे कुछ डोगरी प्रेमी लेखकों ने इस दिशा में निजी तौर पर कुछ मुहावरे, कहावतें, पहेलियां आदि एकत्र करके उनके कोश तैयार करके प्रशंसनीय कार्य किया है तथा जम्मू-कश्मीर की संस्कृति साहित्य अकादमी ने भी डोगरी लोकगीत तथा लोक-कथाएं एकत्र करवा कर इनके संग्रह तैयार करवाने की परियोजना बनाई हुई है। अब तक केहरि सिंह, नरेन्द्र खजूरिया के संपादन में सात तथा ओम गोस्वामी के सम्पादन में छः डोगरी लोककथाओं के संग्रह निकल चुके हैं। यह निस्सन्देह लोक साहित्य-प्रेमियों के लिए भारी हर्ष का विषय है। आशा है कि यह परियोजना उत्तरोत्तर अपने उद्देश्य में सफल होती चलेगी क्योंकि डोगरी लोक-साहित्य का अक्षय भण्डार अभी भी डुग्गर प्रदेश के सुदूर भागों में बिखरा पड़ा है, संकलन के पश्चात् एक दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती के सामने आकर खड़ी हो जाने की सम्भावना से भी हम कदापि इन्कार नहीं कर सकते, वह है लोकसाहित्य के अध्येताओं द्वारा इनके अधुनातन लोकसाहित्य विज्ञान की दृष्टि से विश्लेषणात्मक अध्ययन की। अन्यथा देश के अन्य प्रदेशों के लोकसाहित्य पर हो रहे वैज्ञानिक दृष्टि से कार्य की तुलना में हम बहुत पीछे रह जाएंगे। यह एक गम्भीर समस्या भी है और चुनौती भी। क्योंकि प्रस्तुत लेख का विषय केवल "डोगरी-लोक

कथाएं विश्लेषण तथा अध्ययन की सीमाएं हैं अतः इसके कलेवर के अन्तर्गत रह कर ही हम अपने विषय की ओर प्रवृत्त होते हैं।

डॉ० सत्येन्द्र का यह कथन सर्वथा उपयुक्त तथा यथार्थ है कि लोक-साहित्य में कथा-कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसमें लोक-मानस की मूल भावना का प्रतिनिधित्व करने की अद्भुत क्षमता होती है। लोक-मानस की यह मूल भावना ही किसी भी देश की सांस्कृतिक परम्परा की भी जन्मस्थली होती है। अतः किसी भी देश की सांस्कृतिक परम्परा का जितना जागरूक प्रहरी वहां का लोक साहित्य होता है उतना अन्य कोई माध्यम शायद ही हो। समग्र लोक साहित्य में भी लोक-कथाओं की तो इस विषय में और भी अधिक उपादेय एवं आश्चर्यजनक भूमिका होती है।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि लोक-कथा का उदय और क्रमिक विकास कब और किस प्रकार हुआ होगा? सर्वप्रथम लोक-साहित्य के अध्येता का ध्यान इस महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर जाना नितान्त अनिवार्य है, क्योंकि इस ओर सचेत तथा सक्रिय होने से ही इसके अध्ययन की आधारशिला रखने का उपक्रम बन सकता है।

योरोपीय विद्वान् होरेस हेमैन का कथन है कि वैदिक साहित्य से आरम्भ करके पौराणिक साहित्य तक के समग्र साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें भी पशु-पक्षियों की कहानियां कहीं-कहीं पर उपलब्ध होती हैं। इतना ही नहीं बौद्ध जातकों तथा जैन कथाओं में भी ऐसी कहानियों का अभाव नहीं है। इस प्रकार की सभी कहानियों में नीति तथा उपदेश की बातें भरी पड़ी हैं। अतः अनुमान है कि लोक साहित्य की यह विधा पञ्चतन्त्र की रचना से बहुत पहले जन्म ले चुकी होगी। इतना अवश्य है कि पञ्चतन्त्र की कथाओं ने इस विधा की लोक-कथाओं को अवश्य ही बहुत हद तक प्रभावित किया होगा। यह भी सम्भव है कि परम्परागत पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कथाओं या आख्यान की कथाओं ने पञ्चतन्त्र की कथाओं के सृजन में योगदान दिया हो। यह भी सम्भव है कि इन दोनों प्रकार की कथाओं का सृजन अन्योन्याश्रित सम्बन्ध से हुआ हो। क्योंकि लोक-मानस में लोक-कल्याण की भावना सदा विद्यमान रहती है, अतः इस प्रकार की नीति-शिक्षा तथा जन-कल्याण सम्बन्धित लोक कथाओं का सृजन उसकी एक स्वाभाविक एवं मौलिक उद्भावना हो सकती है।

इसके साथ-साथ लोकमानस का सबसे महत्वपूर्ण पहलू मनोरंजन प्रदान करना भी है। इसीलिए साधारणतया अधिकांश लोक-कथाओं का उद्देश्य केवल सरल बातों के द्वारा श्रोताओं का मन बहलाना ही होता है जिनमें न नीति की बात है न तकनीक की जो भले ही अत्यन्त साधारण कोटि का माना गया हो परन्तु मनोरंजन लोकसाहित्य में सौन्दर्य भाव उत्पन्न करता है, इस की आत्मा को

सजाता तथा संवारता एवं उल्लास से भरता है। इसके साथ ही लोक-कथा साहित्य का कुछ प्रतिशत हमारे लिए ऐसी महत्वपूर्ण सांस्कृतिक सामग्री प्रस्तुत करता है जो हमारे जीवन को एक दिशा प्रदान करने की अत्यन्त प्रशंस्य भूमिका निभाता है। अन्य प्रदेशों या देशों के लोक-साहित्य के समान डोगरी-कथा साहित्य में भी इस प्रकार की सामग्री प्रचुर मात्रा में भरी पड़ी है, जिसके विश्लेषणात्मक अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है।

इस संदर्भ में यह तथ्य भी विचारणीय है कि क्योंकि भारत की संस्कृति अपने व्यापक रूप में धर्म प्रधान ही है, अतः डोगरी लोककथाओं सहित समग्र भारत की अधिकांश लोककथाएं भी धार्मिक आस्थाओं एवं विश्वासों से अनुप्राणित हैं, अतः हमारी उनके प्रति पवित्र श्रद्धा है। इस दृष्टि से ऐसी कथाएं हमारी अमूल्य धरोहर हैं। हम उन्हें अपनी धार्मिक पुस्तकों में चर्चित कथाओं के समान ही आदर देते हैं तथा किसी धार्मिक व्रत या त्योहार के अवसर पर एक दूसरे को श्रद्धा के साथ सुनाते हैं।

डॉ० सत्येन्द्र इन लोक-कथाओं के उदय या विकास में इन पाँच उपादानों तथा व्यापारों को कारण मानते हैं। यहाँ इन पर विचार कर लेना भी अनुपयुक्त नहीं होगा, क्योंकि डोगरी-लोक-कथाओं के वर्गीकरण तथा अध्ययन के लिए भी ये उतने ही उपादेय है जितने अन्य प्रदेशों के लोक-साहित्य के लिए।

(1) आदि मानव द्वारा प्रकृति-तत्वों को देखकर उनसे आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करना तथा उन्हें समीपता से पहचानने का प्रयत्न करते हुए उनके विभिन्न व्यापारों का ज्ञान प्राप्त करना।

(2) वह ज्ञान भी बाद में दो रूपों में विकसित हुआ। एक प्राकृतिक तत्वों के प्रति देवत्व तथा अलौकिकत्व की खोज की ओर प्रवृत्त करने वाला तथा दूसरा प्रकृति के विविध व्यापारों से मिलने वाली शिक्षाओं की सामर्थ्य प्रदान करने वाला। वस्तुतः इसी का परिणाम लोक-कथाओं का विकास है।

(3) पहले ज्ञान को परवर्ती कालों में ऋषि-मुनियों ने और अधिक सुसंस्कृत करके आने वाली पीढ़ियों के लिए श्रद्धा का पात्र बना दिया। यह रूप धीरे-धीरे महाकाव्यों तथा धर्मगाथाओं का रूप लेकर शिष्ट तथा सभ्य लोगों की संपत्ति बनता गया।

इसके विपरीत दूसरे प्रकार का ज्ञान सर्व-साधारण की विरासत बनकर लोक वार्ता के रूप में हमारे सामने आया। इसमें मनोरंजन की अधिक तथा नैतिक शिक्षा की अपेक्षाकृत कम प्रधानता रही। कथा-कहानी के रूप में विकसित यह साहित्य ओजस्वी घटनाओं का तो साक्षी रहा ही, परन्तु यह नामों को

अपने असली रूप में नहीं सम्भाल सका। तथा इसकी आत्मा तो वही रही पर इसका सतही रूप समय-समय पर थोड़ा-बहुत बदलने से बच नहीं सका।

(4) मूल-कथाएं अपने आदि स्रोतों से पृथक् होकर अनेक लोगों के द्वारा विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में ले जाई गईं, जहां इन्हें नया संस्कार मिला, नई दिशा मिली। कई लोककथाएं अपने मूलरूप से इतनी दूर चली गईं कि इनका रूप बड़ा ही साधारण हो गया।

(5) ये लोक-कथाएं विभिन्न प्रदेशों में लोक-मानस में इतनी रच-पच गईं कि उनकी प्रेरणा का स्रोत बन कर स्थानीय तथा लौकिक कथाओं के सृजन में अत्यन्त कारगर सिद्ध हो गईं, तथा ये ऐसी कथाओं के सृजन के लिए भी प्रेरक बनीं, जिसका मूल कथा से सम्बन्ध ही विच्छेद हो गया।

इन उपादानों में से प्रथम के आधार पर हम अनुमान कर सकते हैं कि प्रागैतिहासिक काल के मानव के मानसिक धरातल के कोमल भावों को प्रकृति के विभिन्न मनमोहक तथा चित्ताकर्षक व्यापारों ने अपनी अलौकिकता तथा शक्तिमत्ता से अवश्य चमत्कृत किया होगा तथा उसे उन व्यापारों में किसी विचित्र शक्ति का आभास हुआ होगा, जिससे वह भाव विह्वल, श्रद्धानत, भावुक या संत्रस्त होकर कल्पनालोक में विचरने लग पड़ा होगा, जिससे वह कुछ गाने या कहने के लिए विवश हो गया होगा। बस यहीं लोक साहित्य का श्री गणेश होगा। उसके सामने विभिन्न प्रकृति-तत्त्व या तो देव रूप में उभरे होंगे या मात्र मनोरंजन के विविध साधन। प्रकृति के उन व्यापारों में ही देवताओं के चमत्कारी कृत्यों की कथाओं के बीज बोए गए होंगे जिनसे ऐसी लोक-कथाओं का सृजन हुआ होगा। परिणामतः उषा, अरुण, सूर्य, इन्द्र, वायु, अग्नि आदि विविध प्रकृति-तत्त्व लोक-कथाओं में देवताओं के रूप में चित्रित किये जाने लगे। इन देवों के राजा इन्द्र का शत्रु वृत्र दानव रूप में चित्रित हुआ। आगे चलकर पुराणों में यह भी देखने को मिलता है कि ब्रह्मा के चार मानस पुत्र थे और कुन्ती के चार पुत्र बिना यौन-सम्बन्ध के उत्पन्न हुए थे तथा कई स्थानों में सर्प तथा मानव सभी का पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका के रूप में सम्बन्ध स्थापित होने का भी वर्णन मिलता है। निस्सन्देह इस प्रकार के उपाख्यानों ने लोक-कथाओं को भी अपने प्रभाव से अछूता नहीं रहने दिया। देवताओं से सम्बन्धित उन लोककथाओं में प्रेम, दया, परोपकार, दान आदि सभी तत्त्व भी यथा आवश्यक एवं यथा स्थान अपना-अपना स्थान ग्रहण करते गए। इस प्रकार की लोककथाओं के आदि रूप में यदि इन्द्र तथा उषा के प्रेम-सम्बन्ध तथा वृत्र द्वारा उषा को बन्दिनी बनाने तथा इन्द्र द्वारा वृत्र को नष्ट करके उषा को छुड़ाने की तथा वृत्र को पराजित करने के लिए अग्नि आदि अन्य प्रकृति-तत्त्वों के दैवी रूपों के द्वारा देवराज इन्द्र की सहायता करने की कल्पना की गई थी तो कोई अनुपयुक्त बात नहीं थी। लोक मानस में ऐसी कल्पना उसकी मौलिकता की परिचायक है।

स्पष्ट है कि उस आदि काल के जन-मानस में जब इस प्रकार की कल्पना उभरी होगी तो उसके पीछे लोक-कल्याण की भावना ही प्रमुख रही होगी। प्रकृति-तत्त्वों के साथ इस प्रकार के उपास्य तथा उपासक सम्बन्धों की परिकल्पना के बिना न तो आदि मानव लोक-कल्याण की आशा ही कर सकता था और न ही वह अपनी बौद्धिक एवं मानसिक भाव-भूमि को परितृप्त करने के लिए कोई अन्य साधन जुटा सकता था, जिससे उसे आत्म सन्तोष तथा शान्ति भी प्राप्त होती और मनोरंजन भी।

लोक-मानस की इस प्रकार की उद्भावनाओं का यह सुखद परिणाम हुआ कि बाद में लोक-कथाओं के इसी प्रकार के बिखरे तंतु जुड़-जुड़ कर तथा परिष्कृत होकर वैदिक उपाख्यानों के रूप में विकसित हुए और भारतीय संस्कृति के अमर प्राण बनते गए। चाहे वह इन्द्र और उषा का उपाख्यान हो या सरमा और पणि का, यम-यमी संवाद हो या इन्द्र और वृत्र तथा शंबर आदि के युद्ध का वृत्तान्त हो, सब एक ही सांस्कृतिक सरिता की विभिन्न लहरें थीं। युगों तथा वर्षों के अन्तराल के पश्चात् इस प्रकार की लोक-कथाओं के नायक-नायिकाएं इन्द्र, सूर्य, उषा, सरमा, वृत्र आदि के स्थान पर धीरे-धीरे राम, कृष्ण, बलदेव, सीता, राधा, रावण, कंस आदि आकर इन कथाओं में नायक नायिका तथा प्रतिनायक आदि के रूप में आ विराजे थे। परन्तु, यहाँ यह महत्वपूर्ण तथ्य भी विचारणीय है कि वैदिक तथा पौराणिक साहित्य के माध्यम से विकसित हुई इस प्रकार की लोककथाएं अब लोक कथाएं न रहकर शिष्ट वर्ग की सम्पत्ति बन चुकी थीं। उनके ढाँचे का आधार भले ही आदि मानव की कल्पना-प्रसूत कथाएं ही रही हों परन्तु अब उनमें लोक-कथा-तत्त्व के बीज अत्यन्त प्रच्छन्न अवस्था में विद्यमान थे। इसके विपरीत लोक-कथा के विशुद्ध मौलिक रूप के स्रोत तो लोकमानस में ही विद्यमान थे, जो युगों-युगों से उनकी कल्पना से प्रसूत होकर अपनी अक्षुण्ण धारा में बहते चले गए और अपने आयामों में प्रकृति के सभी तत्त्वों को सम्भाले ही नहीं रखते गए अपितु युग प्रवाह के बावजूद लौकिक परम्पराओं, रीति-रिवाज़ों, सभ्यता तथा संस्कृति के तत्त्व भी आ-आकर समय-समय पर अलिखित रूप में ही उनके साथ जुड़ते गए। इस प्रकार लोक-कथा-साहित्य का भण्डार निरन्तर समृद्ध होता चला गया।

इस प्रकार के लोक-कथा साहित्य के अतिरिक्त समय-समय पर अपने समकालीन समाज के परिवेश से प्रभावित एवं प्रेरित होकर भी कई लोक-कथाएं उद्भूत हुईं परन्तु वे भी अन्ततः उसी समृद्ध भण्डार का अभिन्न अंग बनती गईं।

इसी क्रम में मूल पैशाची प्राकृत में गुणाढ्य द्वारा दूसरी शताब्दी ई० पू० में रचित या सम्पादित 'बडकहा' (बृहत् कथा) जिसके आधार पर सोमदेव भट्ट

ने 'कथा सरित सागर' तथा क्षेमेन्द्र ने 'बृहत् कथा मंजरी' की रचना की थी, भी लोककथाओं का लोकभाषा (पैशाची प्राकृत) में सम्पादित या रचित विशाल संग्रह-ग्रंथ था। इस संग्रह को तैयार करके गुणाढ्य ने निस्सन्देह अपने समकालीन समाज का ही नहीं अपितु आने वाली पीढ़ियों का भी जो उपकार किया था वह कल्पान्त तक स्मरणीय रहेगा। यद्यपि दुर्भाग्य से गुणाढ्य की यह महत्वपूर्ण कृति अब उपलब्ध नहीं है तो भी 'बृहत्-कथा मंजरी' एवं 'कथा सरित् सागर' के माध्यम से इसके महत्व का स्वतः आभास हो जाता है। बृहत् कथा' के आधार पर तैयार किये गये ये दोनों ग्रंथ-रत्न लोककथाओं के ही शिष्ट संस्करण हैं। इनसे प्राचीन भारत के जनमानस की लोक-साहित्य के प्रति गहन अभिरुचि एवं अटूट निष्ठा का परिचय स्वतः हो जाता है। सम्भव है कि पैशाची प्राकृत में रचित गुणाढ्य की इस महत्वपूर्ण रचना के समान तत्कालीन भारत के अन्य प्रदेशों में व्यवहृत प्राकृतों में भी इस प्रकार के कथा-संग्रह तैयार किये गए हों तथा बाद में अपभ्रंश भाषा के विविध रूपों में भी ऐसे प्रयास किये गए हों, परन्तु वे भी बाद में बृहत् कथा के समान ही कालकवलित हो गए हो, अन्यथा डोगरी तथा अन्य प्रदेशों के लोक कथा-साहित्य के क्रमिक विकास के इतिहास-तन्तु और स्पष्टता से पकड़ पाने में इतनी कठिनाई का सामना न करना पड़ता। परन्तु, इसके बावजूद लोक-कथा साहित्य के अध्येता एवं अनुसन्धित्सु को निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उसे निष्ठा के साथ अपनी साधना में प्रयत्नशील रहना चाहिए। उसे तो इनके संग्रहीत समग्र भण्डार को सामने रखकर इन कथाओं का विश्लेषण एवं वर्गीकरण करते हुए अपने अध्ययन की दिशाएं ढूँढ निकालनी चाहिए। डॉ० सत्येन्द्र का यह कथन इस संदर्भ में पथ-निर्देश करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है—'लोक वार्ता में हम किसी न किसी रूप में किसी प्राचीन युग को झाँकता हुआ देख सकते हैं। वह कहानीकार की मौलिक कल्पना नहीं होती वरन् किसी प्राचीन कल्पना का रूपान्तर होती है और उसके विविध निर्माण तन्तुओं में ऐसी अद्भुत असम्भावनाओं का समावेश होता है कि वे किन्हीं अन्य तत्वों की व्याख्या के द्वारा ही सम्भावना का रूप ग्रहण कर पाती है। इन लोक वार्ताओं के कथा-तत्वों को समझने के लिए उनमें झाँकते हुए रहस्य का उद्घाटन करना आवश्यक होता है।

डॉ० सत्येन्द्र का यह कथन स्पष्ट रूप से एक महत्वपूर्ण बिन्दु की ओर इशारा करता है। वह है लगभग प्रस्तुत लेख का विषय, अर्थात् इन लोक-कथाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण तथा वर्गीकरण करके इनकी सहायता से नृवांशिक-विज्ञान (Anthropology) का अध्ययन। इसी तथ्य की पुष्टि डोगरी-लोक-साहित्य के निष्ठावान् अध्येता ओम गोस्वामी के इन शब्दों से भी होती है—"कथाओं के इस प्रवाह ने मनुष्यता को धीरे-धीरे प्रगति की सीढ़ी पर एक-एक पग आगे बढ़ाया है मनुष्य प्राचीन काल में विचारों और कथा-कला की जो प्रगति करता

रहा है उसे पूरे संसार की मानवता तक पहुँचाने के लिए इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। (नागबनी की भूमिका)

उक्त विद्वानों की इन स्थापनाओं के आलोक में जब इन्द्र, अग्नि, उषा, सरमा, पणि, वृत्र आदि के बारे में प्रागैतिहासिक काल के मानव की लोक-कल्पना में जो कहानियां जन्मी थीं वे अपने कई रूप बदलती हुईं देशकाल की सीमाओं को लाँघकर हमारे तक पहुँची हैं और यह भी प्रमाणित हो चुका है कि ऐसी कई कथाएं किसी न किसी रूप में अलग-अलग देशों में पहुँच कर अपने मौलिक बीज-बिन्दुओं को सम्भालते हुए भी उस-उस देश की परम्पराओं तथा परिवेशों के आधार पर विविध रूपों में विकसित हुई हैं। उन सब रूपों के तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो सकता है कि उन सभी रूपों की कोई एक-एक कहानी ही रही होगी। राजा भोज, कृष्ण ते नारद, फूलवती नारद मुनि, जैसी लोक-कथाएं अवश्य ही भारत के विभिन्न प्रदेशों की लोक-कथाओं में विभिन्न रूपों में प्रचलित होंगी। इनके अतिरिक्त डोगरी लोक-कथा 'कुम्बै दा मेला' तो डुग्गर प्रदेश में ही दो रूपों में और शनिग्रह तीन रूपों में प्रचलित है। सम्भवत: इनके दोनों या तीनों या कोई एक रूप भारत के दूसरे प्रदेश से आयातित हों। इस प्रकार की लोक कथाओं का अध्ययन विशेष कर तुलनात्मक पद्धति से करने से निश्चय ही हमारे लिए रोचक सामग्री उपस्थित करता है। इस प्रकार की लोक-कथाओं के अध्ययन के समय हमारी विवेकशीलता जितनी नीर-क्षीर न्याय पर आधारित होगी हमारा विश्लेषणात्मक अध्ययन भी उतना ही तर्क संगत तथा वैज्ञानिक होगा। डोगरी-लोक-कथाओं के अध्येता को तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए इनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके इनके अध्ययन की सीमाएं निर्धारित करके आगे बढ़ना होगा। इस विषय में अध्येता का दृष्टिकोण जितना वैज्ञानिक एवं तार्किक होगा उतना ही सुखद परिणाम सामने आएगा।

कई प्राचीन मूलकथाओं के साथ समानता रखने वाली डोगरी लोक-कथाओं के विश्लेषण तथा तुलनात्मक अध्ययन से लोकमानस की लोक-मंगल की भावना के उत्तरोत्तर विकास क्रम का आभास भी मिलता है। 'कथा सरित सागर' में वर्णित अशोक और विजय दत्त' शीर्षक कहानी का डोगरी लोक-कथा 'फैसला' के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने से यह तथ्य सामने आ जाता है। 'कथा सरित सागर' की कहानी का अशोक दत्त 'फैसला' डोगरी लोक कथा में आकर चार राजकुमारों के रूप में विकसित हो जाता है। इसके विपरीत लोक-मानस की भावनानुकूल न होने से उसी कथा का एक अन्य चरित्र विजय दत्त 'फैसला' डोगरी लोक-कथा में अपना स्थान ही खो बैठता है।

इसी प्रकार 'कथासरित सागर' में वर्णित हरिशर्मा नामक अनपढ़ ब्राह्मण की कहानी डोगरी लोक-कथा साहित्य में आकर 'त्रिड्डे पन्ता' की कहानी नाम

से प्रसिद्ध हो गई। इसमें 'कथा सरित सागर' का हरिशर्मा त्रिड्डा पन्त' तथा जिह्वादासी जिन्दड़ी नौकरानी बन गई है। इसी प्रकार मणि-माणिक्य की चोरी के स्थान पर नौ-लक्खे हार की चोर आदि का वर्णन है। इस प्रकार के परिवर्तन दो बिन्दुओं की ओर इशारा करते हैं—लोक-मानस की मौलिक सूझ-बूझ एवं डुग्गर प्रदेश के परिवेश की माँग। इस प्रकार के उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लोक कथाकार के सामने अपने समकालीन समाज की मनोनुकूलता की तृप्ति करनी भी अभीष्ट थी। इसीलिए उसे मूल कथा में इतने परिवर्तन करने पड़े। निश्चय ही इस प्रकार के सभी उदाहरणों को एकत्र करके उनके तुलनात्मक अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है। डोगरी लोककथाओं के 'जियां-उन्दे दिन फिरे' नामक आठवें भाग की भूमिका में इसके सम्पादक ओम गोस्वामी ने इस ओर लोक-कथा साहित्य के अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट करके महत्व-पूर्ण कार्य किया है।

लोक कथाओं के सृजन में डॉ० सत्येन्द्र द्वारा बतलाए गए ये चार उद्देश्य डोगरी लोक-कथाओं के वर्गीकरण तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए भी अत्यन्त कारगर हैं—

(1) मनोरंजन अथवा मन बहलाव (2) शिक्षा अथवा उपदेश तथा व्रतविषयक कहानियां (3) व्याख्या (4) वाणी विलास।

जैसे कि पूर्व पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है कि मनोरंजन अथवा मन-बहलाव तो इन लोक-कथाओं का प्रधान उद्देश्य रहता ही है, परन्तु दूसरा उद्देश्य अर्थात् शिक्षा अथवा उपदेश व्रत आदि का मनोरंजन के साथ समन्वय हो जाने से सम्बन्धित लोक कथाओं का परिष्कार भी हो जाता है और वे और अधिक प्राणवंत भी हो जाती हैं। तीसरा उद्देश्य प्रथम दो का ही पूरक बन कर आता है। चौथे उद्देश्य अर्थात् वाणी-विलास के अन्तर्गत सौन्दर्य तत्त्व की प्रधानता रहती है। चुटकले, कहावतें, पहेलियां आदि इसी को संवारती-सजाती हैं। कई कहावतें एवं मुहावरे अपने में इतने पूर्ण होते हैं कि उनमें गागर में सागर वाली कहावत चरितार्थ होती है, अतः कभी-कभी उन्हें ही कहानी मान लिया जाता है।

इनके अतिरिक्त लोक कथाओं के कथानक का अपना अलग उद्देश्य भी हो सकता है। इस उद्देश्य के अनुसार ही कहानी का स्वभाव बनता है। अपने स्वभाव के कारण ही लोककथाएं कुछ अलौलिक तत्वों से अलंकृत हो जाती हैं, जिनमें ये कथाएं कई चामत्कारिक गुणों से भर जाती हैं और तब यद्यपि इनमें इस लोक की बातें नहीं होती हैं तो भी वे अपनी पारलौकिक विशेषताओं के कारण हमारे लिए श्रेष्ठ मार्ग दर्शन का काम करती हैं एवं इसीलिए हमारे हृदयों में उनके लिए बड़े आदर का स्थान होता है। हम ऐसी लोक-कथाओं को पढ़ते

समय अत्यन्त भाव-विभोर होकर अपने आप को कुछ क्षणों के लिए किसी विचित्र लोक में विचरण करता हुआ अनुभव करने लग जाते हैं। या इनके विपरीत कुछ कहानियों में मानो अन्य लोकों के देवी-देवता तथा अन्य दिव्य शक्तियां धरती में आकर विचरण करने लगती हैं, जिनसे भी इनके कथानक में चमत्कार आ जाता है, जो हमारे आदर का स्थान बनता है। ये दोनों प्रकार की लोक कथाएं धर्म प्रधान गाथाओं की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। जो केवल धरती के सुख-दुख, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम, संयोग-वियोग, जन्म-मृत्यु आदि तक ही सीमित रह कर केवल उन्हीं का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसी कहानियां शुद्ध रूप से इसी धरती की थाती होने से इसी धरती के लोक-जीवन का वास्तविक प्रतिबिम्ब हुआ करती हैं। डोगरी लोक कथाओं के विशाल भण्डार में इस प्रकार की अनेक कथाएं विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए 'सनेंर ते जट्ट, (स्वर्णकार और जाट) 'इक ही बिल्ली' (एक थी बिल्ली), 'जुलाहे दे घर चोर, (जुलाहे के घर चोर) इत्यादि कथाओं को लिया जा सकता है।

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन के आलोक में हम डोगरी लोक-कथाओं के समग्र संग्रहीत भण्डार का विश्लेषणात्मक दृष्टि से वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए उसे शिल्प-विधान तथा विषयों के आधार पर निम्नलिखित ग्यारह भागों में विभक्त करके अपना अग्रिम मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं —

(1) धर्म गाथाएं (2) पशु-पक्षी सम्बन्धी अथवा पंचतन्त्रीय पद्धति पर लिखी लोक कथाएं (3) परियों से सम्बन्धित लोक कथाएं (4) राक्षसों तथा जादू-टोने से, डाकिनी से सम्बन्धित लोक कथाएं (5) ऋषि-मुनियों तथा साधु-फकीरों से सम्बन्धित लोक कथाएं (6) नागों-सर्पों की लोक कथाएं। (7) पराक्रम वीरता की कथाएं (8) बुझौवल सम्बन्धी कथाएं (9) कारण निर्देशक कथाएं (10) निरीक्षण गर्भित लोक कथाएं (11) बाल-कथाएं तथा (12) राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित लोक कथाएं।

मियकों से सम्बन्धित सभी (क) धर्म गाथाएं (Mythological stories) (ख) लोक कथाएं तथा (ग) वीर गाथाएं (Heroic Tales) प्रथम प्रकार की कथाओं की श्रेणी में आती हैं। सभी धर्म गाथाओं में हम डुग्गर की संस्कृति के स्पष्ट चित्र देखते हैं।

विधाता, दीवाली की कथा, शिवें दी मैह्‌मा (शिवजी की महिमा), महादेव, भगती ते घृस्ती (भक्ति और गृहस्थी), आदि लोक कथाएं धर्म गाथाओं के 'क' उपभाग में रखी जा सकती हैं। सच्चा-चोर, फूलवती, शनि ग्रह, इत्यादि लोक कथा उपभाग 'ख' के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं तथा कुंजू-चैंचलो, बलि, पीर-बाला, मिट्ठा पीर आदि लोक कथाएं उपभाग 'ग' के अन्तर्गत आ सकती हैं।

ब्राह्मण ते ब्राह्मणी (ब्राह्मण और ब्राह्मणी), जंगली-बतखां (जंगली बतखें),

ढोल बादशाह. सुन्ने दा तोता (सोने का तोता), कागभाषा, नीलसर आदि लोक कथाएं भाग दो के अन्तर्गत आती हैं।

सोहन परी, राजा मदन ते मालती परी (राजा मदन और मालती परी), लाल परी ते ओह्‌दा मैह्‌ल इत्यादि लोक कथाएं तृतीय भाग के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं।

राक्श मामा (राक्षस मामा', राखसी रानी (राक्षसी रानी), सुद्दी (सुद्दी राक्षस), टूण्डी रासक, प्रेत, भूत ते पंत; जादूं दी तलुआर (जादू की तलवार), कैंडू भाई आदि लोक कथाएं भाग चार के अन्तर्गत रखी जाती हैं।

परम ज्ञानी, नारद जी दा व्याह्‌ (नारद जी का विवाह), स्वर्ग कु'न जन्दा (स्वर्ग में कौन जाता है ?)। मधुपीर, सच्चा भगत (सच्चा भक्त) आदि लोक कथाएं हम भाग पांच के अन्तर्गत रख सकते हैं।

सप्प ते डड्डू (सर्प और मेंढक), नागवनी, राजा बासके दा बैंस कियां चलेआ ? (राजा वासुकि का वंश कैसे चला ?), इच्छाधारी सप्प (इच्छाधारी सर्प)' भैड़ नाग आदि लोक कथाओं को हम छठे भाग के अन्तर्गत रख सकते हैं।

चुप्प भली (चुप्पी भली), मरासी भाई आदि लोक कथाएं सातवें भाग के अन्तर्गत रख सकते हैं। जुलाहे दे घर चोर (जुलाहे घर चोर), पंज भरजाइयां (पांच भरजाइयां), वहंडग्वाल ते शाह, कुत्थें मेरा घुंडू-मुंडू कटोरा (कहां है मेरा घुंडू-मुंडू कटोरा), आदि लोक कथाएं भाग आठ के अन्तर्गत आती हैं। करनी-भरनी, भावी दा मीह्‌ना (भाभी का ताना), पठान ते सेठ (पठान और सेठ) आदि भाग नौ के अन्तर्गत रख सकते हैं।

जैसा करो वैसा भरो, सनैर ते जट्ट (स्वर्णकार और जाट), झूठै दा मज़ा (झूठ का मज़ा), लोभी रुक्ख (लोभी वृक्ष) आदि कथाएं दसवें भाग के अन्तर्गत आती हैं।

भाई खरबट्ट, नेकी दा फल (नेकी का फल), तोता और इक ही बिल्ली (तोता और एक थी बिल्ली) आदि लोक कथाएं ग्यारहवें भाग के अन्तर्गत आती हैं।

धन्न राजा विक्रमाजीत (धन्य राजा विक्रमादित्य)। (बनें दियां मिंजरां (वन की मंजरियां), नक्के दी नकेल, धन्न राजा विक्रमाजीत (धन्य राजा विक्रमादित्य) आदि लोक कथाएं उपर्युक्त वर्गीकरण के बारहवें भाग में आती हैं।

ऊपर दिये गए विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यदि समग्र डोगरी-कथा-साहित्य का इस प्रकार वर्गीकरण किया जाए तो महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आ सकते हैं। यहां यह बात भी विचारणीय है कि सम्भव है कि

यह वर्गीकरण भी अन्तिम नहीं हो। इन बारह भागों के आगे और उपभाग किये जाने की सम्भावना से भी हम इन्कार नहीं कर सकते। इन कथाओं के वर्गीकरण एवं विश्लेषण करते समय हमारा दृष्टिकोण जितना वैज्ञानिक होगा हम लोक कथाओं की इस अमर सांस्कृतिक विरासत के साथ उतना ही अधिक न्याय करेंगे। इसके साथ ही हमें इन लोक-कथाओं का यथावश्यक तथा यथासम्भव भारत के अन्य प्रदेशों की लोक कथाओं के साथ तुलना करने के लिए भी सजग रहना होगा। यह कार्य यद्यपि कष्ट साध्य है परन्तु लोक साहित्य के सांझे तन्तु पकड़ने में यह कार्य नितान्त सहायक सिद्ध हो सकता है।

एवं च तुलनात्मक अध्ययन भावात्मक एकता की दृष्टि से भी बड़ा कारगर है। तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत हम उन लोक कथाओं को भी ले सकते हैं जो विदेशों से आयातित होकर हमारे लोक साहित्य का अभिन्न अंग बन गई हैं। तुलनात्मक अध्ययन से ही हम यह जान सकते हैं कि कौन-सी लोक कथा एक प्रदेश से चलकर भारत के विभिन्न प्रदेशों की यात्रा करती हुई थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ उन-उन प्रदेशों के कथा-साहित्य का अंग बन गई है। उसके उस रूप परिवर्तन से न तो उसकी रोचकता में कमी आई है और न ही उसके भाव-सौन्दर्य में। ऐसी कथाएं भावरंजक कथाओं की श्रेणी में आती हैं। आज जबकि भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोक साहित्य के संकलन तथा सम्पादन (डोगरी कथा-साहित्य को मिलाकर) का काम तेज़ी से चल रहा है तथा कतिपय विद्वान् उनका विश्लेषण करके उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं तो भी डॉ० सत्येन्द्र जैसे अधिकारी विद्वानों द्वारा बतलाए गए सैद्धान्तिक तथा प्रयोगात्मक पद्धतियों के आधार पर अभी भी अपेक्षित कार्य करने की नितान्त आवश्यकता है।



कश्मीरी लोक-कथाएं : संक्षिप्त मूल्यांकन

□ अर्जुनदेव मजबूर

लोक साहित्य वह निधि है जिस में मानव के विकास का क्रम परत-दर-परत छिपा हुआ है। इस साहित्य में लोगों की कामनाओं, उनके क्रिया कलापों तथा कल्पनाओं का एक महान संसार बसा हुआ है। इस साहित्य में कथाओं का भाग सबसे अधिक है। कोई भी समृद्ध भाषा लोक-कथाओं से खाली नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लोक-साहित्य पर कार्य करने की रुचि उत्पन्न हुई। उसके द्वारा समाज शास्त्र तथा मानव जीवन को समझने की खोज शुरू हुई। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक मिस्टर गोमन ने इस बात की साक्षी दी की लोक-साहित्य द्वारा प्राचीन युग के लोगों के रस्मों रिवाजों तथा धार्मिक-विश्वासों का पूरा व्योरा मिलता है। इन ही दिनों अमेरिका में लोक-साहित्य सोसाइटी का गठन हुआ और 1889 ई० में लोक साहित्य से दिलचस्पी रखने वाले विद्वानों ने 'पेरिस' में एक विशेष सम्मेलन का आयोजन किया और इस में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लोक-साहित्य के अध्ययन का आन्दोलन चला और सारे देशों में फैल गया। योरुप के कुछ देशों में इस साहित्य द्वारा शिक्षा देने में सहायता ली गई।

आज लोक कथाओं का भण्डार इतना विस्तृत है कि इस के बारे में असंख्य पुस्तकें लिखी गई हैं। रूस में इस साहित्य पर काफी काम हुआ है।

भारतवर्ष विचित्र जीव जन्तुओं, प्राकृतिक छटाओं तथा जन सभ्यताओं का देश रहा है अतः इस देश की लोक कहानियां अपना एक अद्भुत रंग लिये हुये सामने आती हैं। इस देश ने थोड़ी-सी कथायें को नहीं अपितु कथाओं के सागर-कथा सरित सागर—को जन्म दिया है। पंचतन्त्र की कहानियों का अनुवाद अरबी, जर्मन, लातीनी, यूनानी, जापानी, चीनी, फ्रांसीसी, अतालवी, रूसी, स्वेज़ी तथा अंग्रेजी भाषाओं में हुआ है।

अरबी भाषा में कथाओं की प्रसिद्ध पुस्तक "अलिफ लैल" के सम्बन्ध में पूर्वी भाषाओं के योरुपी विद्वानों में से 'थियोडोर नोडकी' (1836-1930); दिगोज़ी Degoeji (1836-1909) तथा 'शाविन' और' ओस्ट्रप' की राय में 'अलिफ लैल' की अधिकतर कथायें संस्कृत तथा फारसी भाषाओं से ली गई हैं। यही कारण है कि 'अलिफ लैल" की कथाओं में सिंह, श्रृंगाल, हाथी तथा मोर आदि पक्षियों का स्पष्ट वर्णन आता है।

भारतवर्ष की मौलिक लोक-कथायें पारसी तथा अरबी व्यापारियों द्वारा एशिया और योरुप के देशों में ले जाई गईं। 'कथासरित सागर' इस देश की वह साहित्यिक निधि है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। इस पुस्तकें में वर्णित कथाओं की शैली इतनी रोचक है कि आज भी लोग इन्हें बड़े चाव से सुनते हैं। कुछ वर्ष पूर्व जब कथा सरित सागर के एक भाग वैताल पच्चीसी पर आधारित कश्मीर के भूतपूर्व नाटककार अलीमुहम्मद लोन ने नाटकों का एक विशिष्ट सीरियल रेडियो के लिए लिखा तो सर्वसाधारण में यह सीरियल इतना लोकप्रिय हुआ कि कथाओं में आये राजाओं आदि के नाम प्रत्येक व्यक्ति को कण्ठस्थ हो गये। इस का स्पष्ट कारण था कथाओं की उत्कृष्ट शैली और वर्णन का विचित्र ढंग। कथा सरित सागर की कहानियों में जो नाटकीय अन्दाज़ मिलता है वह लेखक की विद्वता तथा कला-कौशल का पता देता है। भारतीय कथाओं का यह विशाल सागर भारत की प्राय: सभी भाषाओं में अनूदित हुआ है। इस का अंग्रेज़ी अनुवाद संसार भर के पुस्तकालयों में प्राप्य है।

कश्मीर अपनी भौगोलिक विलक्षणता के कारण हर चीज़ में विलक्षण रहा है। यही कारण है कि यहां का लोक साहित्य भी अपना एक अलग अंदाज और लहजा लिये हुए है। 1887 ई० में जे० एच० नोल्ज़ में कश्मीरी लोक कथाओं को सर्व प्रथम एकत्र करके प्रकाशित किया। वे इस कार्य के लिए गांव-गांव घूमे और काफी परिश्रम के पश्चात् इन कथाओं को संग्रहीत किया। इस संग्रह का नाम 'फोक टेल्ज ऑफ कश्मीर' है। इसमें 64 कथायें सम्मिलित हैं। 1886 में डॉ० स्टाइन ने हातम तेली से जो उत्तरी-कश्मीर के रहने वाले थे कुछ लोक कथायें सुनीं और उन्हें उसी लहजे में रोमन लिपि में अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित कराया। हातम्ज़ टेल्ज़ नाम की यह पुस्तक 1917 ई० में प्रकाशित हुई और अब यह पुस्तक कुछ पुस्तकालयों में ही उपलब्ध है। इस पुस्तक में ग्यारह कथायें संग्रहीत हैं। इसमें गोविन्द कौल तथा ग्रियरसन महोदय के अलग-अलग लहजे मिलते हैं। हातम के कथा कहने का अन्दाज़ काफी रोचक था उसे सुनने के लिए सैंकड़ों लोग उसके इर्द गिर्द एकत्र हो जाते थे। बीच-बीच में आये कवित्त गाकर पढ़े जाते थे।

1955 ई० में लाल रुख पब्लिकेशंज' ने 'पोशि थॅर' (फुल जड़ी) नाम का लोक-कथा संकलन प्रकाशित किया। इस का संकलन नूर मुहम्मद रोशन ने किया। इस में तीन कथायें संग्रहीत हैं। इसी प्रकार 1961 में प्रोफेसर एस० एल० साधू ने एक और संग्रह प्रकाशित किया।

1961 के पश्चात् 1972 में जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा 'हाक जैनगेरी' ने लोक कथाओं का प्रथम संग्रह (कश्मीरी भाषा में संकलित किया। इस प्रकाशित संकलन में 39 कहानियां सम्मिलित की गई हैं। इस क्रम का दूसरा संग्रह 1973 में प्रकाशित हुआ, इस का संकलन मुहम्मद अहसन ने किया, इसमें 53 कहानियां सम्मिलित हैं। तीसरा संकलन जो मार्च 1974 में प्रकाशित हुआ, भी इन के द्वारा ही संकलित हुआ। इन कहानियों को भिन्न लेखकों ने इकट्ठा किया। इस के पश्चात् इस क्रम में भूतपूर्व सोमनाथ साधू तथा श्याम लाल परदेशी और मोतीलाल साकी द्वारा दो संकलन एकत्र कराके कल्चरल अकादमी ने छाया कराये। इन कथा संग्रहों के सम्बन्ध में एक बात अवश्य है कि इनमें यहां की मौलिक लोक कथायें कम मिलती है और इन की अपेक्षा कुछ सौ वर्ष पूर्व बनी कथायें अधिक मिलती हैं। दो वर्ष पूर्व पाकिस्तान में Folk Tales of Kashmir—कश्मीर की लोक कथायें नाम से जो पुस्तक छपी है उसमें मौलिक लोक कथाओं को ही स्थान दिया गया है।

पाश्चात्य देशों में लोक कथाओं के संकलन का कार्य वैज्ञानिक स्तर पर हुआ है। बच्चों लिए लोक-कथाओं के जो विदेशी संग्रह देखने को मिलते हैं वे बहुत ही सुन्दर छपे हैं और उन्हें चित्रों द्वारा सजाया संवारा गया है। किन्तु कश्मीर में इस प्रकार का कोई कार्य दृष्टि में नहीं आया है। असल में अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल इस ओर कोई रुचि नहीं दिखा रहे और इस प्रकार नई पीढ़ी अब अपनी प्राचीन लोक-कथाओं के अनुपम साहित्य को भूलने लगी है।

मूल्यांकन :

कश्मीरी लोक-कथाओं का आधार सामाजिक भी है और ऐतिहासिक भी। मनोरंजन मानव के लिए अत्यंत आवश्यक रहा है उसके जन्म से ही। जब लिखाई का आविष्कार नहीं हुआ था तब भी लोग कथाओं को मौखिक रूप से सुनते थे और उनका आनन्द लेते थे। गांव में जो दूर-दूर फैले हुए थे शीतकाल की दारुण रातें काटना कठिन होता था अत: चार-चार पांच-पांच घरों के लोग एक बड़े कमरे में सायंकाल एकत्र होते और कथाकार को आदर सहित कोई कहानी कहने का आग्रह करते। कथाकार एक रोचक क्रम से कथा सुनाता और कभी-कभी कहानी सुनते-सुनते आधी रात हो जाती थी किन्तु कोई व्यक्ति उठने का नाम न लेता था। आधी रात को जब कोई खिड़की खोलता तो बाहर बर्फ की चादर फैली होती थी और कहानी के रस में किसी

को इस का भान तक न होता था। कथाकार को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। प्रायः हर घर का कोई न कोई बुजुर्ग व्यक्ति कहानी सुना सकता था। इन कहानियों में लोक कहानियां ही रहतीं और यह कथायें एक पीढ़ी से दूसरी तक चलती रहतीं। यह कथायें कहां से आईं इस सम्बन्ध में कुछ ठीक से कहना कठिन हैं। कहानियां बनती रहीं और चलती रहीं। कहा जाता है कि कई कश्मीरी कथायें मध्य एशिया की लोक-कथाओं से मिलती-जुलती हैं। कहानियों के अंश बदलते भी रहे हैं और कई कहानियों को एक ही रूप में भिन्न-भिन्न देशों में चलते देखकर कुछ अचम्भा भी होता है। वास्तव में मानव प्रकृति, उद्‌गार, भावनायें, कल्पनायें और मनोकामनायें हर देश में एक समान हैं। इन में केवल भाषा का अन्तर है और बस। प्रेमाख्यान भी एक ही ढंग के चलते हैं। कथाओं का एक देश से दूसरे देश तक आना भी सीधी बात है। व्यापार, पर्यटन आदि द्वारा जहां वस्तुएं एक देश से दूसरे देश तक पहुंचती रहीं वहां कथाओं को कौन रोक सकता था। कश्मीर की लोक-कथाओं में यहां का परिवेश जी उठा है। कश्मीर की एक लोक कहानी 'कश्मीर का गडरिया और बंगाल का जोगी' में यहां के वन, इनमें चीड़ और देवदार की घनी छांव, पर्वत शिखर यहां तक कि जड़ी-बूटियों का सुन्दर वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीर और बंगाल के सम्बन्ध प्राचीन समय से रहे हैं। इस कथा में एक विचारणीय बात आती है मानव हमदर्दी की और इस से वह युग हमारे सामने नाचने लगता है जब धन की कामना स्व के लिए न करके समाज के कल्याण के लिए की जाती थी। जब बंगाली जादूगर गड़रिये से पूछता है कि यदि वे अजगर को मारने में सफल हो गये और अजगर के नीचे भूमि में दबा खज़ाना उनके हाथ आ गया तो वह इस धन का प्रयोग किस प्रकार करेगा तो गड़रिया उत्तर देता है कि वह इस धन का कुछ भाग गरीबों में बांट देगा और कुछ हिस्सा अपने गांव को निरन्तर आने वाले बाढ़ से बचाने में लगा देगा। इस कहानी में पुराने राजाओं के सिक्के जमीन में दफन होने का ज़िक्र भी आता है। प्रकृति इस कहानी में जी उठी है।

'द्वदुक द्वदस त आबुक आबस'--दूध का दूध और पानी का पानी शीर्षक लोक कथा में ईमानदारी की प्रशंसा की गई और दिखाया गया है कि किस प्रकार एक लालची ब्राह्मण की वह सारी सम्पत्ति खाक हो गई, जो उस ने दूध में पानी मिलाने से प्राप्त की थी। यह सामाजिक भय आज समाप्त हो चुका है और आज दूध में पानी मिलाने वाले को बड़ा आदमी समझा जाता है। प्राचीनकाल में लोक कथाओं का अवश्य अच्छा प्रभाव पड़ता रहा होगा ऐसा स्पष्ट परिलक्षित होता है इन कथाओं का विश्लेषण करने से।

कश्मीर की लोक-कहानियों में पशु-पक्षी, राजा, मन्त्री, नाई, किसान सब पूर्ण रूप से चित्रित किये गये हैं। एक खास बात जो प्रायः बादशाहों की

कहानियों में नज़र आती है वह यह कि राजा रात को भेस बदल कर प्रजा की हालत देखने के लिए स्वयं रात को घूमते रहते थे और जहां भी कोई अव्यवस्था नज़र आती थी उस को दूर करते थे। इस प्रकार राजा और नागरिकों का सम्पर्क बना रहता था। पशुओं में रीछ, सिंह, बैल, घोड़ा, बन्दर, गीदड़, लोमडी तथा पक्षियों में कौआ, तोता, अबाबील, मैना, चिड़िया तथा चीलों से कई प्रकार के काम लिये गये हैं। इन में संदेश पहुंचाना, रक्षा करना, एक दूसरे की सहायता करना तथा अविश्वास की बातें मिलती हैं।

कश्मीर की प्राचीनतम लोक-कथाओं में 'हीमाल-नागराज' (नॉगिराय) का श्रेष्ठ स्थान है। यह कथा उस युग से सम्बन्धित है जिसमें यहां नाग जाति तथा अन्य प्राचीन जातियां रहती थीं। शुपैयान के प्रसिद्ध कस्बे के समीप वलपुर में घटित यह लोक-कथा दक्षिण भारत तथा एक योरोपीय देश में भी कुछ इसी प्रकार से प्रचलित है। इस कथा में प्रेम में जाति भेद के आने से जो दुर्दशा हीमाल जैसी सुन्दर राजकुमारी की होती है उसी का वर्णन मिलता है। प्रेम में जाति और धर्म का कोई बन्धन नहीं, यही है इस लोक कथा का महत्व। इस लोक कथा को फारसी भाषा में भी काव्य स्वरूप में लिखा गया है और इस प्रकार कश्मीरी लोक-कथाओं को फारसी द्वारा अन्य देशों में पहुंचने का अवसर प्राप्त हुआ होगा। यह कहानी आज भी मूक रूप से जाति-बन्धन का मज़ाक उड़ाती हुई दिखाई पड़ती है। इसमें मनुष्य के सर्प रूप में बदलने का जिक्र भी आता है जिस से यह कथा बहुत पुरानी लगती है।

कश्मीरी लोक-कथाओं में यहां के लोगों का जीवन स्पष्ट झलकता है। लोग भूखे हैं, पैसा पास नहीं और फिर भी जी रहे हैं और आशा का दामन नहीं छोड़ते। स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का कई कहानियों में सुन्दर चित्र खींचा गया है। 'ग्रूस तॅ पोंज़'—किसान और बन्दर की लोक कथा में एक किसान जब गरीबी के कारण अपनी पत्नी से लड़ पड़ता है तो वह कई मास तक उस से बात करना छोड़ देता है, किन्तु उसकी पत्नी विवश है वह पति के लिए खेत में खाना ले जाती है किन्तु बीच में कोई बन्दर आकर बार-बार खाना चट कर जाता है। परन्तु किसान को अपनी पत्नी पर विश्वास नहीं, वह समझता है कि उस की बीवी उससे मज़ाक कर रही है और उस के लिए खाली बर्तन रख कर जाती है। किन्तु अन्त में उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि खाना कोई बन्दर आकर उड़ा ले जाता था। यह देख कर किसान को काफी दुख होता है और वह बन्दर को मारने पर आमादा होता है। बन्दर अपनी चालाकी से किसान का विवाह एक राजकुमारी से करा देता है और अपनी जान बचा लेता है।

ऐतिहासिक आधार वाली कहानियों में एक लोक कहानी है "ज़रि बूज वहि वॅहरि बड़शाह मूद"—वहरे ने बारह वर्ष के पश्चात् बड़शाह (जैनुल-

आबिदीन) के मरने का समाचार सुना, कहावत बन गई है। इस लोक कथा का सम्बन्ध उस युग से सीधा जुड़ जाता है जब कश्मीर पर बादशाह ज़ैनुल आबिदीन राज करता था। इस बादशाह ने एक इलाके पर पानी ले जाने के लिए नहर खुदवाना चाही किन्तु पानी उपलब्ध न होने से राजा की स्कीम धरी की धरी रह गई। वह एक फकीर के पास गये और उन से जल मांगने की विनती की और यह विजयीं करने से पूर्व वह उसके पास एक शाल भेंट देने गए। साधु ने वह शाल उठा कर धूनी में फैंक दिया। और यह कीमती शाल राख हो गया। बादशाह गुस्से हुआ। इस पर साधू ने मुट्ठी भर राख उठाई इसे फूंका और शाल वैसे का वैसा हो गया। साधू ने शाल वापस कर दिया। बादशाह हैरान रह गया। उसने जोगी से पुनः विनती की जोगी ने इस इलाके के जल देवता के पास जाकर जल मांगने का परामर्श दिया। जल देवता ने शर्त रखी कि जल नहर में आयेगा तो अवश्य किन्तु जब बड़शाह की मृत्यु होगी तो पानी गायब हो जाएगा। बड़शाह ने कहा वह अब बूढ़ा हो गया है अतः कभी भी मर सकता है इसलिए यह शर्त रखना उचित न होगा। अन्त में एक बहरे के बारे में यह शर्त रखी गई कि जब वह बहरा यह समाचार सुनेगा कि बडशाह मर गया है तो नहर में पानी आना बंद हो जाएगा। राजा ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। कहते हैं कि बड़शाह की मृत्यु के बारह वर्ष पश्चात् जब उस बहरे ने राजा के मरने का समाचार सुना तो एकदम नहर में पानी आना बंद हो गया। इस कहानी से इस बादशाह के उस कार्य पर प्रकाश पड़ता है जिसके द्वारा वह कश्मीर में नहरों का जाल बिछाना चाहता था। इस लोक कथा में एक विशेष क्षेत्र 'पहरु' से ही इस कथा का सम्बन्ध है। इसी प्रकार कई अन्य कथायें ऐतिहासिक आधार पर रची गई हैं। ऐसी लोक-कथायें एक ऐसा इतिहास है जिस का रचयिता हमारे सामने नहीं आता।

इन कथाओं में बुद्धिमान व्यापारियों मूर्ख राजाओं, धनी ख्वाजों, चालाक किसानों, चोरों की बन्दर बांट, भाई भाई के विरोधों, ठगों परियों, मछेरों, घर जमाइयों, वज़ीरों, शहज़ादों, जिनों, भूतों, गेजों, बेइमान व्यक्ति की तबाहियों, जोगियों, गडरियों, चिनारों, कुत्तों तथा गुलामों के मुंह बोलते चित्र पेश किये गये हैं।

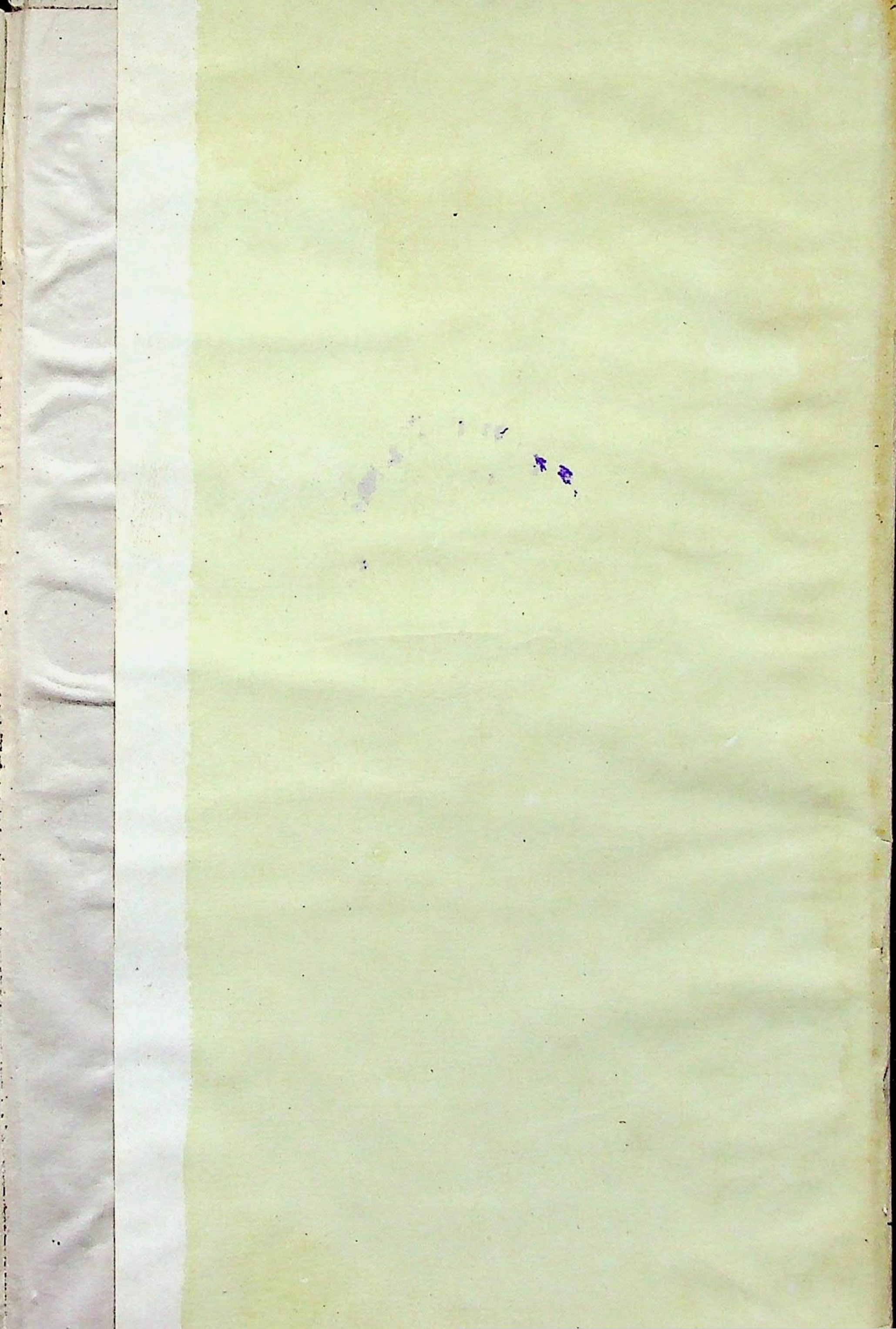
कश्मीरी लोक-कथाओं में वह कथायें भी शामिल हैं जो बच्चों के लिए रची गई हैं। इनमें चूहों, मुर्गों, कौओं तथा चिड़ियों आदि के माध्यम से अत्यन्त रुचिकर कहानियां कही गई हैं। इन से शिक्षा भी मिलती है और बच्चों का वह शौक भी पूरा होता है जिस के अधीन वह प्रायः कहानियां सुनने के इच्छुक रहते हैं।

कश्मीरी लोक-कथाओं में बुद्धिमत्ता के कई उदाहरण मिलते हैं इनमें नीति, राजनीति, वीरता, समाज शास्त्र आदि के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। इन में कल्पना और रचना का पूरा ख्याल रखा गया है 'सनिकिसर' नाम की लोक-कहानी में भाई द्वारा तिरस्कृत बहन एक कौए की मदद से किस प्रकार रानी बनती है, उस युग की सोच को हमारे सामने ला खड़ा करती है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि यह अनमोल निधि हमारे प्राचीन को साकार रूप में जीवित करती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन कथाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण हो और इन्हें विभिन्न भाषाओं में अनूदित करके सचित्र छापा जाये, विशेषकर बालक-बालिकाओं के लिए इन कथाओं को संक्षिप्त रूप में छापना अत्यन्त आवश्यक है।









Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU & Printed at Rohini Printers, JALANDHAR (Pb.)